सम्पादकीय

# कठुआ, उन्नाव बलात्कार : ये कहाँ आ गये?

अप्रैल के पूर्वार्द्ध में उत्तर प्रदेश के उन्नाव और जम्मू के कठुआ में बलात्कार और हत्या की जो नृशंस घटनाएँ प्रकाश में आयीं, उसके बाद देशभर में गम और गुस्से की लहर दौड़ गयी। वैसे तो महिलाओं के ऊपर यौन हिंसा की बर्बर घटनाओं से हर रोज अखबार भरे होते हैं, हर 20 मिनट में देश के किसी न किसी हिस्से में बलात्कार की वारदात होती है और जिस दौरान इन दोनों घटनाओं को लेकर पूरे देश में लोग सड़कों पर उतर रहे थे, उसी बीच सासाराम, सूरत, दिल्ली, नोएडा, एटा और कई अन्य इलाकों से ऐसी ही दरिन्दगी की खबरें सामने आयीं। लेकिन कठुआ और उन्नाव का जघन्यतम अपराध इस मामले में तमाम दूसरी घटनाओं से अलग और विचलित करने वाला है कि ये मामले भाजपा शासित राज्यों में हुए और सत्ता से जुड़े लोगों ने अपराधियों को बचाने के लिए एडी-चोटी का जोर लगा दिया।

उन्नाव की घटना में लिप्त भाजपा विधायक कुलदीप सिंह सैंगर को बचाने में पूरा शासन-प्रशासन लगा रहा। पीड़िता और उसके परिवार द्वारा बार-बार गुहार लगाये जाने के बावजूद उत्तर प्रदेश की योगी सरकार ने उसके खिलाफ केस दर्ज करने और उसकी गिरफ्तारी से यह कहते हुए साफ इनकार किया कि विधायक के खिलाफ पर्याप्त सबूत नहीं है। इस बीच पीड़िता और उसके परिवार को लगातार धमकिया मिलती रही। पिता की शिकायत पर विधायक के खिलाफ कार्रवाई करने के बजाय पुलिस ने उसे फर्जी केस में गिरफ्तार किया और इतनी बरबता से पिटाई की गयी कि हिरासत में ही उनकी मौत हो गयी। उनके पूरे शरीर पर चोटों के निशान और मरने से पहले कागजों पर अँगूठे की छाप लेते लोगों का वीडियो भी सामने आया। इन सारी घटनाओं के बीच अपराधी विधायक टीवी चैनलों पर बेहया हँसी हँसते हुए अपने निर्दोष होने का बयान देता रहा, पुलिस के आला अफसर उसे माननीय विधायक जी सम्बोधित करते रहे, और भाजपा के कई नेता पीड़िता का चरित्र हनन करते रहे और विधायक के पक्ष में खड़ा उत्तर प्रदेश का शासन-प्रशासन अट्ठास करता रहा। और तो और उन्नाव मामले में पीड़िता को न्याय दिलाने की जगह योगी सरकार ने भाजपा के एक बड़े नेता स्वामी चिन्मयानन्द पर चल रहे बलात्कार के एक मामले को वापस लेने का फैसला भी कर लिया।

आखिरकार इस घटना को लेकर जनता के बढ़ते गुस्से और सोशल मीडिया पर चलायी गयी मुहिम के बाद इलाहाबाद उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायधीश और एक अन्य न्यायधीश की पीठ ने इस घटना को संज्ञान में लिया। मुख्य न्यायधीश ने अपराधी के बचाव में पूरे शासन-प्रशासन के खड़े होने को लेकर गहरी चिन्ता जतायी और इसे एक खतरनाक संकेत बताया। उन्होंने निर्देश जारी किया कि बलात्कार के आरोपी विधायक पर मुकदमा दर्ज कर उसे गिरफ्तार किया जाए। इसके बाद ही सीबीआई ने विधायक को हिरासत में लेकर पूछताछ शुरू की और उस पर मुकदमा दर्ज किया।

कठुआ की घटना तो और भी भयावह है, जिसमें एक आठ साल की बच्ची का अपहरण करके उससे एक मन्दिर में कई दिनों तक सामूहिक बलात्कार किया गया और उसकी हत्या करके लाश जंगल में फेंक दी गयी। चार्जशीट के मुताबिक उस बच्ची की हत्या करने से पहले मामले की जाँच में शामिल पुलिस अधिकारी दीपक खजूरिया ने कहा कि थोड़ा इन्तजार करो मरने से पहले मैं इसके साथ बलात्कार करूँगा।

घटना की शुरुआत 10 जनवरी को हुई जब कठुआ जिले के हीरानगर तहसील में रसाना गाँव की 8 साल की एक बकरवाल बच्ची घोड़ा चराने गयी और देर शाम तक वापस नहीं लौटी। बच्ची के परिवार ने हीरानगर थाने में रिपोर्ट लिखवायी जिस पर कोई कार्रवाई नहीं की गयी। एक हफ्ते बाद 17 जनवरी को उस मासूम की लाश जंगल में मिली। मेडिकल रिपोर्ट से पता चला कि उसके साथ कई दिनों तक सामूहिक बलात्कार किया गया और उसके बाद पत्थर से कुचल कर उसकी हत्या कर दी गयी। इस घटना के खिलाफ आरोपियों की गिरफ्तारी की माँग कर रहे उस बच्ची के परिजनों को पुलिस दमन का सामना करना पड़ा। इस घटना के खिलाफ जब पूरे जम्मू-कश्मीर में लोग सड़कों पर उतरे और विधान सभा में भी मामला उठा तब एक 15 साल के लड़के को गिरफ्तार किया गया। इसके बावजूद असली गुनाहगारों की गिरफ्तारी के लिए आन्दोलन जारी रहा। 20 जनवरी को थाने के एसएचओ को निलम्बित करने और मजिस्ट्रेट जाँच का आदेश दिये जाने के

बावजूद जब लोगों का आक्रोश ठंडा नहीं हुआ तो मुख्यमंत्री ने 23 जनवरी को मामला राज्य पुलिस की अपराध शाखा को सौंप दिया जिसने विशेष जाँच दल बनाकर नये सिरे से जाँच शुरू की। जाँच दल ने सब इन्सपेक्टर आनन्द दत्ता और स्पेशल पुलिस अधिकारी दीपक खजूरिया को गिरफ्तार किया जो इस बलात्कार के मामले में शामिल था। जाँच दल ने चार पुलिस वालों और चार अन्य गिरफ्तार किया जिसमें साजिश रचने वाला मुख्य आरोपी पूर्व राजस्व अधिकारी साँजी राम भी शामिल था। हद तो तब हो गई जब इस पूरे मामले को साम्प्रदायिक रंग दे दिया गया। हिन्दू एकता मोर्चा ने उस मासूम बच्ची के बलात्कार और हत्या में शामिल आरोपियों के समर्थन में कठुआ में जुलूस निकाला। जुलूस में तिरंगा लहराते हुए जय श्री राम के नारे लगाये गये। इसमें जम्मू कश्मीर सरकार में शामिल भाजपा के दो मंत्री लालसिंह और चन्द्रप्रकाश गंगा भी शामिल हुए जिन्होंने भड़काऊ भाषण दिया। 9 अप्रैल को वकीलों के एक समूह ने अपराध शाखा को आरोप पत्र दाखिल करने से रोका। जम्मू बार एसोसिएशन ने मासूम बच्ची के पक्ष में खड़ी वकील दीपिका रजावत को डराया धमकाया। अगले दिन 10 अप्रैल को कानून मंत्री के हस्तक्षेप के बाद भी छः घण्टे तक हंगामा चलता रहा, तब जाकर अदालत में आरोप पत्र दाखिल हो पाया।

चार्जशीट में उस मासूम बच्ची के साथ किये गये जघन्यतम अपराधों का ब्योरा संज्ञा शून्य कर देने वाला है। उसके विस्तार में जाने के बजाय इस मामले की मूल वजह को जानना जरूरी है। चार्जशीट में यह दर्ज है कि इस घटना की साजिश रचने वाले साँजी राम ने बकरवाल समुदाय को उस इलाके से भगाने के लिए इस घृणित अपराध को अंजाम दिया। उसने अपने इस कुकृत्य में अपने भतिजे, बेटे सहित छः लोगों को शामिल किया। जम्मू कश्मीर में बकरवाल समुदाय चरवाहे हैं। जो जाड़े में मैदानी इलाकों और गर्मी में बर्फीले घास के मैदानों में डेरा डालते हैं। कठुआ के रसाना इलाके में उनके डेरा न डालने और चारागाह की जमीन न दिये जाने के लिए उसने बकरवाल समुदाय के खिलाफ स्थानीय हिन्दुओं को उकसाया था। इस मुहिम में भाजपा के मंत्री ही नहीं बड़े नेता भी शामिल रहे हैं। जम्मू कश्मीर के भाजपा प्रभारी राम माधव ने कठुआ बलात्कार की घटना में शामिल अपने मंत्रियों के इस्तीफे पर सफाई देते हुए अपने बयान में यह भी कहा था कि हमने सरकार से खानाबदोशों द्वारा वन भूमि के अतिक्रमण से सम्बन्धित आदिवासी विभाग के एक निर्देश को वापस लेने की माँग की थी। जाहिर है कि भाजपा अपनी रणनीति के तहत जम्मू में हिन्दूओं के भीतर यह काल्पनिक भय भर रही है कि वहाँ मुस्लिम आबादी बढ़ रही है। सच्चाई यह है कि जम्मू कश्मीर में बकरवाल घूमंतू समुदाय हजारों वर्षों से रह रहा है। वन भूमि पर उनका नैसर्गिक अधिकार है। लेकिन नफरत की राजनीति के झण्डाबरदार अपनी वोट की राजनीति में वहाँ फूट के बीज बो रहे हैं, जिसका नतीजा कठुआ की इस नृशंसतम घटना के रूप में सामने आया।

कठुआ और उन्नाव की घटनाओं को देखकर ऐसा लगने लगा कि जैसे इस देश में एक नयी राजनीतिक संस्कृति स्थापित करने की कोशिश हो रही है-- सत्ता पक्ष से जुड़े लोगों को कानून से ऊपर होना चाहिए और उन्हें हर तरह का अपराध करने की खुली छूट होनी चाहिए। पहले भी राजनीतिक पार्टियाँ अपने लोगों के अपराध छुपाने और उनको बचाने के लिए पर्दे के पीछे सरकारी मशीनरी का प्रयोग करती थीं। लेकिन इन दोनों घटनाओं में जिस तरह सरेआम पीड़ित पक्ष को डराने धमकाने, उनका मुँहबन्द करने, घर्म और देशभक्ति की आड़ में आरोपियों को बचाने के लिए आन्दोलन छोड़ने, न्याय प्रक्रिया को बाधित करने और एक मामले में पीड़िता के पिता की हत्या करवाने तक का अभियान चलाया गया वह देश में लोकतंत्र और न्याय-व्यवस्था को बेमानी बना देने की कोशिश थी। यह सत्ताधारी पार्टी और उसके समर्थकों को कानून से ऊपर स्थापित करने का एक कुत्सित प्रयास था।

गम और गुस्से की इस घड़ी में हमें गम्भीरता से विचार करना चाहिए कि बलात्कार की तेजी से बढ़ रही घटनाओं के पीछे क्या कारण हैं। अकसर बलात्कारियों को फाँसी देने की माँग उठती है। पिछले कई राज्यों ने बलात्कार के खिलाफ बड़े कानून बनाये भी है। सवाल यह है कि जब बलात्कार के अधिकांश मामलों में चार्जशीट ही दाखिल नहीं होती, कानूनी प्रक्रिया भी पूरी नहीं होती, तो कठोर सजा तात्कालिक गुस्से पर पानी फेरने के सिवा और कुछ नहीं। जब राज्य मशीनरी अधिकांश बलात्कारियों के बचाव में खड़ी है और 90 प्रतिशत मामलों में लम्बी प्रक्रिया, सामाजिक दबाव और धमकी के भय से मुलजिम छूट जाते हैं तो कड़ी सजा की बात करना बेमानी है। सर्वोच्च न्यायालय की एक वकील ने बताया कि मुज्जफरनगर साम्प्रदायिक हिंसा के दौरान सात मुस्लिम महिलाओं के साथ सामूहिक बलात्कार के मुकदमे दर्ज हुए। जिनमें से एक पीड़िता की मौत हो गयी, पाँच ने मामले से खुद को अलग कर लिया और एक महिला का अभी तक बयान नहीं लिया गया है। आज जब योगी सरकार दंगे के दौरान अपने लोगों के खिलाफ हुए मुकदमे वापस ले रही है तब बलात्कारियों के मुकदमे का क्या हश्र होगा।

जहाँ तक कड़े कानून की बात है, हमारे देश में न्याय पैसे का खेल है। ऐसे में कड़े कानून गरीबों के खिलाफ ही इस्तेमाल होंगे। यह तय है। इसलिए सवाल कानूनी प्रक्रिया को सही ढंग

से पूरा करने का है न कि कड़े कानून बनाकर जनविरोधी सरकार के हाथ में और नये अस्त्र देने का। बलात्कार की जड़ें गहरी हैं जो पुरुषसत्ता और सामन्ती सोच में निहित हैं। औरत के प्रति घटिया नजरिया, उनकी पवित्रता, औरत के प्रति मान-मर्यादा की फर्जी धारणा, माँ-बहन की गन्दी गालियों से शुरू होकर अपने दुश्मन से बदले में उसकी इज्जत लूटने तक जाती है। यह हमारे यहाँ की सड़ी-गली सामन्तवादी संस्कृति के साथ-साथ विकृत-वीभत्स साम्राज्यवादी संस्कृति के अश्लील गठबन्धन का नतीजा है। जब तक एक स्वस्थ समाज नहीं बनाया जाता जिसमें हर तरह के भेदभाव को मिटा दिया जाये तब तक इस समस्या का समाधान नहीं किया जा सकता। एक न्यायपूर्ण समतामूलक समाज में, जिसमें लिंग, जाति, धर्म, क्षेत्र और ऊँच-नीच की दीवार न हो, इस बर्बरता को खत्म किया जा सकता है।

देश भर में इन दोनों घटनाओं को लेकर उत्पन्न आक्रोश, लोगों का सड़कों पर उतरना और जनाक्रोश को देखते हुए न्यायपालिका के हस्तक्षेप ने तात्कालिक रूप से कानून के रक्षकों द्वारा कानून को अपनी जेब में रखने की साजिश को बेनकाब किया और उन्हें पीछे हटने के लिए मजबूर किया। इन दोनों घटनाओं को लेकर जितने बड़े पैमाने पर देश के कोने-कोने में विरोध प्रदर्शन हुए हैं वह अपने आप में उम्मीद जगानेवाली है। जनता की जागरूकता ही उनके अधिकारों को महफूज रख सकती है। वरना इस नये दौर के मुहाफिजों ने कानून की धज्जी उड़ाने और हर कीमत पर अपनी साम्प्रदायिक विभाजनकारी राजनीति को जारी रखने में कोई कमी नहीं छोड़ी है। आज भी इन दोनों मामलों में कार्रवाई को प्रभावित करने से वे बाज नहीं आयेंगे। जम्मू-कश्मीर के मंत्रीमण्डल से जिन दो भाजपा नेताओं ने देशव्यापी विरोध को देखते हुए इस्तीफा दिया, वे अब खुलकर कठुआ मामले के साम्प्रदायीकरण की मुहिम में शामिल हैं। सत्ता चाटुकार टीवी चैनलों और सोशल मीड़िया पर अफवाह और झूट का अम्बार खड़ा किया जा रहा है। विकास के नाम पर सत्ता में आने वाली सरकार जब हर मोर्चे पर असफल साबित हो गयी है, देश में आर्थिक संकट गहरा रहा है, भ्रष्टाचार खत्म होने के बजाय उसके नये-नये कीर्तिमान बन रहे हैं, तब एक ही आजमाया हुआ नुस्खा फिर से काम में लाया जा रहा है। देश भर में साम्प्रदायिकता का जहर फैलाना और असली समस्या से जनता का ध्यान भटकाना। ऐसे में हर संवेदनशील और जागरूक नागरिक का यह कर्तव्य है कि वह उनके झूठ का पर्दाफाश करे और जनता के बीच सच्चाई का प्रसार करे। देशव्यापी सचेतन और संगठित प्रयास ही देश को रसातल में पहुँचाये जाने से रोक सकता है।

# पाठकों से अपील

**❑ 'देश-विदेश' अंक 28 आपके हाथ में है। हमारा प्रयास है कि इसे अनियतकालीन पत्रिका की जगह हर तीन माह पर नियमित प्रकाशित किया जाय।**

**❑ जिन साथियों को पत्रिका निरन्तर डाक से भेजी जा रही है, वे कृपया सूचित करें कि उन्हें पत्रिका मिल रही है या नहीं और उन्हें आगे से भेजी जाय या नहीं।**

**❑ देश-विदेश अव्यवसायिक पत्रिका है। यह साथियों के श्रम और सहयोग से ही प्रकाशित होती है। आर्थिक संकट से जूझते हुए अब तक हमने 27 अंक निकाले। पाठकों के सहयोग से ही यह सम्भव हो पाया।**

**❑ पत्रिका अभी भी अनियमित है, इसलिए नियमित चन्दे की दर तय करना सम्भव नहीं। डाक से मँगवाने के लिए 5 अंकों की सहयोग राशि 100 रुपये या आजीवन सदस्यता न्यूनतम 1000 रुपये निम्नलिखित बैंक खाते में अन्तरित करें। और इसकी सूचना एसएमएस या ई मेल से भेज दें।**

**नाम : अतुल कुमार गुप्ता**
**मोबाइल नं. 9810104481**
**S.B. AèC : 601510100024041**
**IFSC : BKID 0006015**
**बैंक ऑफ इंडिया,**
**जीटी रोड, शाहदरा, दिल्ली-32**

## मनी ऑर्डर भेजने का पता है-

**अतुल कुमार गुप्ता**
**1/4649/45 बी, गली न. 4,**
**न्यू मॉर्डन शहादरा**
**दिल्ली- 110032**

# भारत में गहराता आर्थिक संकट

**--अनुराग**

देश का गहराता आर्थिक संकट किसी से छिपा नहीं है। इसके चलते लोगों का मौजूदा राजनीति और लोकतंत्र पर विश्वास कम होता जा रहा है। मौजूदा प्रधानमंत्री मोदी की छवि भी अब धूमिल होती जा रही है। उनकी लोकप्रियता के दो आधार थे-- हिन्दुत्व और विकासोन्मुख अर्थव्यवस्था। लेकिन दूसरा आधार अब तेजी से खिसकने लग गया है।

नोटबन्दी और जीएसटी केन्द्र सरकार की ऐसी दो नीतियाँ साबित हुई हैं जिसने देश की अर्थव्यवस्था को कमजोर कर दिया है। नोटबन्दी के एक साल से भी कम समय बाद जीएसटी लगाकर अर्थव्यवस्था की वृद्धि को न सिर्फ धीमा किया गया बल्कि पहले से ही सुस्त उत्पादन और निर्माण क्षेत्र को भी ठप्प कर दिया गया है। पिछले दो वर्षों में, भारत का उपभोक्ता विश्वास कम हुआ है, निर्माण की गति धीमी हो गयी है, निवेश दर गिर गयी है, कई कारखाने बन्द हो गये हैं तथा बेरोजगारी और महँगाई बढ़ती जा रही है।

भ्रष्टाचार, आतंकवाद और काले धन को बड़ा मुद्दा बनाते हुए प्रधानमंत्री ने नवम्बर 2016 में पुराने बड़े नोटों को अमान्य घोषित कर दिया था। लेकिन न तो आतंकवाद की कमर टूटी, न ही भ्रष्टाचार का कुछ बिगड़ा और न ही कभी यह पता चल पाया कि वास्तव में कितना कालाधन पकड़ा गया। रिजर्व बैंक के आँकड़े से 98. 96 प्रतिशत पुराने नोट बैंकों में वापस आने की पुष्टि की जा चुकी है। फिर भी अब तक पुराने नोट बदले जाने की बातें अखबारों की सुर्खियों में बनी हुई हैं। इतना ही नहीं, नोटबन्दी ने भारत की अर्थव्यवस्था और लोगों पर जमकर कहर बरपा किया। काला धन, जिसे हटाने के लिए इतनी बड़ी मुहिम चलायी गयी थी वह कहाँ गया, उसका कुछ अता-पता नहीं चला।

नोटबन्दी और नयी टैक्स व्यवस्था के चलते घरेलू उद्योग-धन्धे चौपट हो गये। बड़ी संख्या में लघु, कुटीर और मध्यम उद्योग-धन्धे बन्द हो गये। 2017 में जनवरी से अप्रैल तक करीब 15 लाख लोग बेरोजगार हो गये थे। 73 प्रतिशत निर्माण कम्पनियों ने कई महीनों तक भर्तियाँ नहीं निकाली, उल्टे कर्मचारियों को नौकरी से बाहर कर दिया। दिसम्बर 2016 में बिहार के वित्तमंत्री के मुताबिक बिहार के 95 प्रतिशत प्रवासी श्रमिक घर वापस लौट आये थे क्योंकि उनके मालिकों के पास वेतन का भुगतान करने के लिए पैसा नहीं था। देश के सबसे बड़े निर्माताओं द्वारा किये गये सर्वेक्षण में 8 नवम्बर 2016 के बाद उद्योगों में 35 प्रतिशत से 55 प्रतिशत नौकरियाँ कम हुई हैं।

नोटबन्दी ने असंगठित क्षेत्र, छोटे और मध्यम उद्यमों को सबसे अधिक प्रभावित किया। इस अकेले निर्णय ने लाखों अनुबन्धित मजदूरों को बेरोजगार कर दिया। रोजगार के अवसरों के मामले में पूरे देश का असंगठित क्षेत्र प्लेग जैसी महामारी का शिकार हो गया है। जैसे ही रोजगार के अवसर सम्भलने लगे वैसे ही नयी कर व्यवस्था, जीएसटी ने उन्हे फिर से निगल लिया। कपड़ा उद्योग, निर्माण और रीयल एस्टेट जैसे अन्य दूसरे उद्योगों को जीएसटी ने गम्भीर रूप से लम्बे समय के लिए फिर से बीमार कर दिया है।

2011 की जनगणना के अनुसार केवल 10 प्रतिशत लोग ही संगठित क्षेत्र में काम करते हैं जबकि 90 प्रतिशत लोग असंगठित क्षेत्र में काम करते हैं। भारत में हर महीने 10-15 लाख नये नौजवान बाजार में रोजगार तलाशने आते है। ऐसे में नये नौजवानों का भविष्य भयंकर अन्धेरे में है। रोजगार न होने के चलते नौजवान अपराध की तरफ बढ़ रहे हैं। नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो के अनुसार वर्ष 2016 में अपराधों की संख्या भी 2.6 प्रतिशत की दर से बढ़ी है। यह कोई अच्छा संकेत नहीं है।

इण्डियन एक्सप्रेस द्वारा पेश किये गये अग्रणी सूचीबद्ध कम्पनियों के रोजगार के आँकड़े बताते हैं कि पिछले साल के मुकाबले ज्यादातर कम्पनियों ने 2016-17 में अधिक संख्या में लोगों को बेरोजगार किया। 107 कम्पनियों के सर्वे में पाया गया कि इन कम्पनियों ने कुल 14,668 कर्मचारियों को बेरोजगार किया है। जैसे-- एलएंडटी (1,888), हिन्दुस्तान यूनिलीवर (1,453), आइडिया सेल्यूलर (707), एसीसी (535), टाटा मोटर्स (534), टाटा स्टील (450), हिंडाल्को (439) और टाइटन इंडस्ट्रीज (422)।

वर्ष 2005 से 2009 के बीच सालाना विकास दर 8 प्रतिशत से अधिक (सरकारी आँकड़ों से) तथा 2010 और 2014 के

बीच 7 प्रतिशत से अधिक रही है। वहीं वर्ष 2017-18 में विकास दर घटकर 6.5 रह गयी है। यह पिछले चार वर्षों में सबसे कम है। विकास दर का यह अनुमानित आँकड़ा देश के घरेलू उद्योग-धन्धों की हकीकत बयान करता है।

भारत का विशाल बाजार और यहाँ की अर्थव्यवस्था विदेशी निवेशकों को निवेश के लिए लुभाती है। उनके लिए सरकार लाल कारपेट बिछाये बैठी है, इन्तजार करते-करते आँखे पथरा जाने को हैं लेकिन कोई निवेश नहीं आ रहा है। निवेशकों को रिझाने के लिए सरकार ने सारे हथकण्डे आपनाये, मुनाफे की गारण्टी भी देने का वादा किया और श्रम कानूनों में सुधार के नाम पर एक-एक करके मजदूरों के सारे हक भी छीन लिये। फिर भी कोई निवेशक भारत में आने का नाम नहीं ले रहा है। प्रधानमंत्री मोदी ने कुल 49 देशों और 6 महाद्वीपों में निवेश के लिए चक्कर लगाये और इस यात्रा में कुल 275 करोड़ रुपये (नवम्बर 2016 तक) खर्च कर चुके हैं। इतने भ्रमण और मिन्नतों के बाद भी बहुत थोड़े निवेशक ही आ पाये।

सरकार की नीतियों के चलते संरक्षण प्राप्त ऊपर के एक प्रतिशत लोगों को छोड़कर देश का हर तबका सामाजिक और आर्थिक रुप से विभाजित और कमजोर हुआ है। लोगों में एक अलग तरह की शत्रुता की भावना उपजी है। खासकर हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच नफरत बढ़ी है और जातियों के बीच भी दुर्भावनायें पैदा हुई हैं। इससे सामाजिक ताना-बाना कमजोर हुआ है।

भारत में औद्योगीकरण काफी निम्न स्तर पर है, जिसके चलते अपनी हर छोटी-बड़ी जरूरत के लिए बाहरी देशों का दरवाजा खटखटाना पड़ता है। देश के औद्योगिक क्षेत्र की हालत बेहद बदतर स्थिति में है। फिर भी औद्योगिकरण बढ़ाने के बजाय मोदी सरकार का मुख्य एजेण्डा एफडीआई और विनिवेश को तेज करना ही रहा है। श्रमिकों के हक को ताक पर रख कर श्रम कानूनों में बदलाव किये जा रहे हैं। देश में साम्प्रदायिक और जातीय भेदभाव को बढ़ाया जा रहा है और इस कोशिश में हिन्दुत्ववादी संगठन और पार्टियाँ सबसे आगे हैं। इन पर सरकार प्रभावी रोक लगा पाने में नाकामयाब हो गयी है। जब किसी भी समय निवेशक का पैसा डूबने का डर हो, तो सामाजिक तनाव के इस माहौल में आखिर कौन निवेशक यहाँ निवेश करना चाहेगा?

**सरकार की नीतियों के चलते संरक्षण प्राप्त ऊपर के एक प्रतिशत लोगों को छोड़कर देश का हर तबका सामाजिक और आर्थिक रुप से विभाजित और कमजोर हुआ है। लोगों में एक अलग तरह की शत्रुता की भावना उपजी है।**

औद्योगिकरण को बढ़ाने के नाम पर मोदी सरकार ने एक और भ्रमित करने वाला कदम उठाया। विदेशी निवेशकों को आकर्षित करने के लिए "मेक इन इण्डिया" अभियान की शुरुआत की गयी। इस अभियान के तहत 2016 में लगाये गये ज्यादातर उद्यम लगभग एक साल बाद 2017 में बन्द हो गये।

प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना (पीएमकेवाई) शुरू की गयी और कहा गया कि हमारे नौजवानों के पास स्किल नहीं है। इस योजना के तहत पूरे देश में युवाओं को स्किल्ड बनाने की मुहिम चलाने की डींगे हाँकी गयी। जुलाई 2017 के आँकड़ों पर गौर करें तो पता चलता है कि कुल 30.67 लाख उम्मीदवार जो प्रशिक्षित किये जा चुके थे या ट्रेनिंग पीरियड में थे, उनमें से केवल 2.9 लाख उम्मीदवारों को ही नौकरी के ऑफर प्राप्त हुए हैं। यह कुल के 10 प्रतिशत से भी कम है। इस सरकारी आँकड़े में यह नहीं बताया गया कि इन नौजवानों को केवल ऑफर ही मिले हैं या नौकरियाँ भी मिली हैं। ये नौकरियाँ सम्मानजनक भी हैं या नहीं?

रोजगार सृजन देश की सबसे जरूरी राजनीतिक प्राथमिकताओं में से एक है। मोदी एक साल में 2 करोड़ नौकरियाँ पैदा करने के अपने वादे के करीब भी नहीं फटके। इसके उलटे बेरोजगारों को अपमानित करने की सारी हदें पार करते हुए पकौड़ा तलने का एक नया जुमला उछाला गया। मोदी जी को जब युवाओं से पकौड़े ही तलवाने थे तो फिर स्किल डेवलपमेंट और "मेक इन इण्डिया" जैसी अन्य योजनाओं को चलाने का क्या उद्देश्य था?

2015 और 2016 में देश के दक्षिणी हिस्से में एक के बाद एक आने वाले सूखे ने लाखों किसानों को बर्बाद कर दिया, जिससे समग्र विकास प्रभावित हो गया। खुद को किसानों-मजदूरों का बेटा बताने वाले प्रधानमंत्री ने किसानों की मदद के बजाय उनको मिलने वाली सब्सिडी लगभग खत्म कर दी। देश में विदेशी कम्पनियों को खेती का ठेका दे दिया गया। साम्राज्यवादी देशों से मुक्त व्यापार समझौते के तहत कृषि उत्पादों के गैर जरूरी आयात की मंजूरी दी गयी। पिछले कुछ वर्षों में कृषि उत्पादों के आयात में 4 गुने की वृद्धि हुई है तो दूसरी ओर निर्यात में काफी कमी आयी है। मतलब साफ है जब बिकेगा नहीं तो पैदा क्यों करेंगे और जब पैदा नहीं करेंगे तो निर्यात के बजाय आयात ही कर सकते हैं। आयात में खर्च होने वाली धनराशि किसानों की जेब में जाने के बजाय साम्राज्यवादी देशों के खातों में जा रही है।

भूमि अधिग्रहण अधिनियम जैसी किसान विरोधी नीतियों को अध्यादेश के

जरिये जबरन लागू करने की कोशिश की गयी। कानूनी जामा न पहना पाने की स्थिति में सरकारें जनता से लाठी-डंडे के जोर से जमीन छीन रही हैं।

खेती में साम्राज्यवादी नीतियों को तेजी से लागू किया जा रहा है। किसानों की तबाही की कोई परवाह नहीं की जा रही है। खेती, स्वास्थ्य और पूरे पर्यावरण के लिए नुकसानदेह बीटी और जीएम बीजों की मंजूरी, बिना किसी नुकसान की परवाह किये दे दी गयी। साम्राज्यवादी कम्पनियों के मुँह में मुनाफे का खून लग गया है और वे किसानों को लूट कर मुनाफा कमा रही हैं। चुनाव के समय कर्ज माफी जैसे जुमले भी खूब उछाले गये। मध्य-प्रदेश में किसानों ने जब कर्ज माफी के लिए आन्दोलन किया तो उन पर लाठी-गोली चलायी गयी। सरकार ने गोली से 6 किसानों की हत्या कर दी लेकिन किसानों की हत्या के बाद भी प्रधान सेवक ने झूठी सहानभूति भी नहीं दिखायी।

वैश्विक स्तर पर ही नहीं भारत में भी अमीरी-गरीबी के बीच की खाई और ज्यादा गहरी हुई है। ऑक्सफेम की रिपोर्ट के अनुसार दुनिया की कुल सम्पत्ति का 82 प्रतिशत हिस्सा सिर्फ सबसे अमीर एक प्रतिशत लोगों के पास है। दूसरी तरफ दुनिया के 370 करोड़ सबसे गरीब लोगों की सम्पत्ति में कोई वृद्धि नहीं हुई है।

वहीं 2017 में भारत में कुल उत्पन्न सम्पत्ति का 73 प्रतिशत हिस्सा देश के एक प्रतिशत सबसे अमीर लोगों के नाम रहा। अब भारत में अरबपतियों की संख्या 101 हो गयी है। केवल 2017 में ही इनकी कुल सम्पत्ति में 20.7 लाख करोड़ की बढ़ोतरी हुई जो भारत सरकार के वर्तमान बजट के लगभग बराबर है। पिछले साल यह रकम 4.89 लाख करोड़ रुपये थी। जहाँ एक ओर अरबपति बढ़े हैं वही दूसरी ओर भारत की 99 प्रतिशत आबादी बाकी बचे 27 प्रतिशत में अपना हिस्सा पाने के लिए, अपने अस्तित्व को बचाये रखने के लिए लड़ रही है।

**साम्राज्यवादी कम्पनियों के मुँह में मुनाफे का खून लग गया है और वे किसानों को लूट कर मुनाफा कमा रही हैं।**

अर्थव्यवस्था में गिरावट को सम्भालने में नाकाम सरकारों ने लोगों को धर्म या जाति के आधार पर विभाजित कर दिया है। साम्प्रदायिक तनाव पूरे देश मे जोरों पर है। मोदी जबसे सत्ता में आये हैं, तभी से लव जेहाद, घर वापसी, पाकिस्तान के खिलाफ अन्धराष्ट्रवाद, गाय बचाओ अभियान जैसे आग लगाने वाले मुद्दों की वजह से अब तक कई लोगों की जान जा चुकी है। आज गोमांस को राजनीति का विषय बना दिया गया है, शक के आधार पर कई मुस्लिम मार दिये गये। वोट बैंक के लिए हिन्दू-मुस्लिम नफरत को भड़काया जा रहा है, जिसके चलते सामाजिक अपराधों में वृद्धि हो रही है और दिलों में नफरत का सिलसिला बढ़ता जा रहा है। आज आर्थिक गतिविधियाँ सीमित हैं तो लोगों को साम्प्रदायिकता में लगा देना एक आसान राजनीतिक चाल बन गयी है, जिसमें जनता उलझी रहे और आर्थिक गतिविधियों और रोजगार जैसे बड़े मुद्दों पर सवाल न खड़ा होने पाये। सरकार अपनी विफलताओं को छुपाने के लिए जनता को धर्म और जाति में बाँटकर उलझाए रखना चाहती है। हर राजनीतिक समस्या को हिन्दू-मुस्लिम की तरफ मोड़ दिया गया है। देश को दंगे की आग में झोकने के लिए अफवाहों की आँधी चलायी जा रही है। ढेरों गम्भीर और बुनियादी सवालों से सरकार ने मुँह मोड़ लिया है। जनमानस का राजनीति के प्रति बढ़ता अविश्वास कहीं देश के तथाकथित लोकतंत्र की जड़ों को ही खोखला न कर दे।

## भगोड़े माल्या का जहाज जब्त

**भगोड़े विजय माल्या के पास एक आलीशान जहाज था, जो अब जब्त कर लिया गया है। यह छह सौ तीन करोड़ रुपये की कीमत वाला जहाज है। इस जहाज की लम्बाई 93 मीटर है। इसके अन्दर कमरे कितने हैं और ऐशो-आराम के क्या-क्या साधन है, इसका अंदाजा इससे लगाइये कि इसमें पन्द्रह सीटों वाला सिनेमाघर भी है। मतलब समुद्र की लहरों पर हल्के-हल्के हिलते-डुलते पिक्चर देखने का मजा। सर जॉन एल्टान जॉन का पियानो जो दो करोड़ से ज्यादा कीमत में खरीदा गया, वह भी यहाँ पर है। चालीस कर्मचारी हैं, जो इस जहाज का रखरखाव करते हैं और इसे चलाते हैं। जहाज का नाम था इंडियन एम्प्रेस।**

**इसमें किसी को शक नहीं होना चाहिए कि हमसे चुराये गये पैसे से ही इस आलीशान जहाज की खरीदारी की गयी होगी। हमारे यहाँ से नौ हजार करोड़ रुपये लेकर वह फरार हो गया। हमारी सरकार कुछ नहीं कर पायी। सरकार बगले झाँकती रह गयी। लेकिन, दूसरी जगहों पर ऐसा नहीं है। वहाँ पर कानून लागू होता है। माल्या ने जहाज पर तैनात 40 क्रू मेंबर को पिछले साल सितम्बर के बाद तनख्वाह नहीं दी। कर्मचारियों को वेतन नहीं देने वाला भी वहाँ पर बच नहीं**

# पीएनबी बैंक घोटाला

**--मुकेश त्यागी**

"मेरा मानना है कि बैंकिंग संस्थाएँ हमारी नागरिक स्वतंत्रताओं के लिए स्थायी फौज से भी ज्यादा खतरनाक हैं। अगर अमरीकन जनता ने बैंकों को अपनी मुद्रा पर नियंत्रण दिया तो कभी मुद्रा-स्फीति, कभी मुद्रा-संकुचन द्वारा बैंक और उनके बनाये कॉर्पोरेट जनता को उनकी सारी सम्पत्ति से वंचित कर देंगे और उनके बच्चे उस महाद्वीप पर बेघर पैदा होंगे जिसे उनके पिताओं ने जीता था।" ये किसी मार्क्सवादी का नहीं बल्कि पूँजीवादी दुनिया के सिरमौर अमरीका के महानायकों में से एक, तीसरे राष्ट्रपति थॉमस जेफर्सन का कथन है।

बैंक मानव उपभोग लायक कुछ भी पैदा नहीं करते। पहले उनका काम सिर्फ व्यापारिक गतिविधियों में लगी विभिन्न पार्टियों के बीच भुगतान और हिसाब को सही ढंग से सुनिश्चित करना था। लेकिन पूँजीपतियों के बीच प्रतिद्वंद्विता में स्थायी पूँजी में लगातार बढ़ते निवेश की जरूरत के चलते, अपनी उपरोक्त भूमिका से पूँजी की बड़ी मात्रा की उपलब्धता वाले बैंकों ने मध्यस्थता से आगे बढ़कर अब पूरी अर्थव्यवस्था पर ही नियंत्रण कर लिया है। इससे श्रमिकों की श्रम शक्ति द्वारा उत्पादित अधिशेष का एक बड़ा भाग बैंकों को मिलने से उनकी पूँजी लगातार विशालकाय होती गयी है। बढ़ते मुनाफे की हवस में इन्होने पूरी अर्थव्यवस्था को अपने जुए का अड्डा बना दिया है। लेकिन इस जुए में उनकी जीत होने पर तो हमारी जेब कटती ही है, उनके हारने पर भी वह रकम उनकी सेवक सरकारें हमारी जेब से वसूल कर उनकी भरपाई करती हैं क्योंकि अब मरणासन्न पूँजीवाद का दुनिया भर में बैंकों के बारे में सिद्धान्त ही बन गया है-- टू बिग, टू फेल। टू बिग, टू जेल। यानी बैंक इतने शक्तिशाली हैं कि कोई सरकार उन्हें डूबने देने की हिम्मत नहीं कर सकती और उनके मालिकों/उच्च प्रबंधकों को किसी भी जुर्म में सख्त सजा भी नहीं दे सकती।

आज भारत की तस्वीर भी पूरी तरह यही है। बैंक बीसियों लाख करोड़ रुपये कर्जों और फ्रॉड में डुबा चुके हैं, कई का तो दिवाला निकल गया, कितने पूँजीपति उनके बल पर खरबों की सम्पत्ति के मालिक बन गये हैं। पर इसके कारण इनमें से किसी सरमायादार, सेठ-महाजन का आज तक कुछ न बिगड़ा, बल्कि और दौलत इकट्ठी होती गयी। पहले पंजाब नेशनल बैंक में नीरव मोदी-मेहुल चोकसी समूह द्वारा किया गया फ्रॉड सामने आने के बाद से इस किस्म की लूट के सामने आने का एक नया दौर ही शुरू हुआ है। इस फ्रॉड की कुल रकम बढ़ते-बढ़ते अब 12,700 करोड़ तक पहुँच गयी है, साथ ही इनकी कम्पनियों द्वारा लिए गये अन्य कर्जों को जोड़ा जाये तो कुल रकम 21 हजार करोड़ रुपये होने का अनुमान है। इसके अतिरिक्त रोटोमैक के विक्रम कोठारी द्वारा 4290 करोड़, सेठ द्वारकादास की फर्म द्वारा 390 करोड़ रुपये, आदि कई फ्रॉड के मामले सामने आये हैं। पर इससे पहले के सालों में भी स्थिति यही रही है। कांग्रेसी शासन के आखिरी दो वित्तीय वर्षों में 6 हजार करोड़ रुपये सालाना कर्ज फ्रॉड के मामले सामने आये थे। मोदी सरकार आने के पहले वित्तीय वर्ष में 15 हजार करोड़, दूसरे साल 16 हजार करोड़ और तीसरे साल 18 हजार करोड़ रुपये के ऐसे ही फ्रॉड सामने आये हैं। यह चौथा साल अभी पूरा होना बाकी है और पिछले दिनों खबरों में रहे मामले ही 30 हजार करोड़ रुपये के लपेट में जा पहुँचे हैं। यह मामले सिर्फ सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों तक सीमित नहीं हैं। हालाँकि निजी बैंक नकारात्मक खबरों के प्रचार-प्रसार को रोकने में ज्यादा माहिर हैं, फिर भी पिछले एक साल में सबसे बड़े निजी बैंकों– एचडीएफसी, आईसीआईसीआई और एक्सिस बैंक समेत निजी क्षेत्र के बैंकों द्वारा डूबे कर्जों को छिपाने, फ्रॉड और ग्राहकों के साथ धोखाधड़ी के बहुत सारे मामले सामने आ चुके हैं।

लेकिन सिर्फ यही फ्रॉड नहीं हैं। एक और किस्म का फ्रॉड है जिसे विलफुल डिफाल्टर यानी इरादतन गबनकर्ता कहा जाता है। रिजर्व बैंक ने कर्ज न चुकाने वालों में भी यह एक श्रेणी बनायी है और बैंक मजबूरीवश तभी किसी को इसमें डालते हैं जब कर्ज लेने वाला खुद ही सुसाइडल कदम उठा कर उनके सामने कोई विकल्प न छोड़े। इसका मतलब यह प्रमाणित और जगजाहिर हो चुका है कि उसने लिए हुए कर्ज का गबन कर लिया, चुकाने की हैसियत है, पर इरादतन नहीं चुकाता। पिछले साल 30 सितम्बर को ही ऐसे इरादतन गबन की रकम भी बढ़कर 1 लाख 11 हजार 739 करोड़ पहुँच चुकी थी। इनमें 11 तो एक हजार करोड़ से ऊपर वाले हैं; उनमें से भी सबसे बड़ा

विनसम डायमंड का मालिक जतिन मेहता है जो भागकर सेंट किट्स का नागरिक बन गया है। वैसे यह रकम भी थोड़ी कम दिखाई गयी है क्योंकि इसमें विजय माल्या का बकाया सिर्फ 3 हजार करोड़ ही दिखाया गया है, जो वास्तव में कहीं अधिक है। इसके अलावा एनपीए या कर्ज की अन्य डूबी हुई रकम को जोड़ा जाये तो पिछले कुछ सालों में ही बैंकों के जरिये पूँजीपतियों द्वारा लूट ली गयी कुल रकम 10 लाख करोड़ रुपये से ज्यादा जा पहुँचेगी, जिसमें इस रकम का कई साल का ब्याज शामिल नहीं क्योंकि बैंक इसे जोड़ना बन्द कर देते हैं। बट्टे खाते में डाली गयी रकम या राइट ऑफ का भी बड़ा हिस्सा इसमें शामिल नहीं है। पिछले दो दशकों का हिसाब भी अगर एकत्र कर इसमें जोड़ा जाये तो उदारीकरण के 26 वर्ष के दौर में सिर्फ एक भयंकर लूट का इतिहास ही सामने आयेगा।

लेकिन क्या इन मामलों को मात्र फ्रॉड कहना सही है? फ्रॉड कहने से ऐसा आभास होता है कि ये बैंकिंग प्रबंधन की कमजोरियों का फायदा उठाकर कुछ जालसाजों-गबनकर्ताओं द्वारा किये गये अपराध हैं जिसके खिलाफ सरकार, बैंकिंग प्रणाली और पुलिस-न्याय व्यवस्था जाँच और सजा के लिए कदम उठा रही हैं। वित्त और अन्य मंत्री, प्रशासक भी यही बयान दे रहे हैं कि रिजर्व बैंक तथा अन्य संस्थाओं के नियामकों, प्रबंधकों, ऑडिटरों की लापरवाही या मिलीभगत से ये अपराध हुए हैं और अब इनके खिलाफ सख्त कार्रवाई की जा रही है। लेकिन सारी प्रणाली और घटनाक्रम पर ध्यान दें तो वास्तव में ऐसा नहीं है। पहली बात तो यह कि ये सब बैंकों, सीबीआई, रिजर्व बैंक और सरकार को आज से नहीं बल्कि बहुत पहले से मालूम था। जैसे पीएनबी ने खुद स्टॉक एक्सचेंज को सूचना दी है कि गीतांजलि का फ्रॉड 2 मार्च 2017 को ही मालूम हो चुका था। कोठारी के बारे में भी ट्रिब्यूनल ने 1 जुलाई 2017 को ही फ्रॉड को घोषणा कर दी थी। द्वारकादास के मामले में भी 2015 से ही खबर थी, पर सीबीआई ने रिपोर्ट ही नहीं लिखी। अन्य सभी मामलों में भी ऐसी ही सूचनाएँ हैं कि यह सब वर्षों से बैंक, रिजर्व बैंक, सीबीआई, सरकार, सबकी जानकारी और सहमति से जारी था लेकिन अब जबकि मोदी, चौकसी, माल्या, मेहता, द्वारकादास, आदि विदेश भाग गये या रकम विदेश या देश में ही ठिकाने लगायी जा चुकी, सुबूत नष्ट किये जा चुके तो अब इन्हें फ्रॉड घोषित कर कार्रवाई की नौटंकी जारी है। दूसरी बात यह कि ये तो वह मामले हैं जहाँ खुद कर्ज लेने वालों ने भागकर सब वैकल्पिक रास्ते बन्द कर लिये अन्यथा भूषण, एस्सार, विडिओकोन, आदि तमाम पूँजीपति इनसे भी बड़ी रकमें दबाकर आराम से भारत में ही मौजूद हैं, उनके विरुद्ध कोई कार्रवाई नहीं हो रही है, उन्हें कोई फ्रॉड भी घोषित नहीं करता, बल्कि वे पहली कम्पनियों को "बीमार" बताकर, नये कारोबार शुरू कर खुद अपनी सेहत और दौलत को और ऊँचाइयों पर पहुँचा रहे हैं। दिलचस्प बात यह है कि फ्रॉड की खबर जाहिर होने पर पीएनबी ने 30 बैंकों को एक पत्र भेजकर कहा कि यह फ्रॉड अकेले उनके ही बैंक में नहीं हुआ, शेष बैंक भी इसमें शामिल थे और यह सब 7 साल से चल रहा था! इसका अर्थ है कि नीरव मोदी-मेहुल चोकसी की कम्पनियों द्वारा बैंक कर्ज लेने के लिए अपनाया गया तरीका कोई अजूबा नहीं बल्कि एक सामान्य कारोबारी तरीका था जिसका चलन पूरे बैंकिंग उद्योग में है।

एक और बात प्रचारित करने का प्रयास जोरों पर है कि पीएनबी, ओबीसी, आदि बैंकों में अधिक फ्रॉड की वजह इनका सरकारी बैंक होना है क्योंकि सरकारी बैंकों में प्रक्रियाएँ कमजोर हैं, भ्रष्टाचार और राजनीतिक दखलंदाजी अधिक है। इसके आधार पर कई विश्लेषक इनके निजीकरण के लिए इन घटनाओं को सशक्त तर्क के रूप में प्रयोग कर रहे हैं। किंतु तथ्य इस तर्क की पुष्टि नहीं करते। पहले फ्रॉड की ही बात लें तो संसद में वित्त मंत्रालय ने स्वयं बताया कि 2014 से 2017 के तीन सालों में बैंकों में कुल 12778 फ्रॉड हुए जिनमें से एक तिहाई यानी 4156 निजी बैंकों में हुए, शेष सरकारी बैंकों में। मतलब बैंक सरकारी हैं या निजी, इससे फ्रॉड में कोई कमी-बेशी नहीं होती। फिर चोकसी के गीतांजलि समूह का मुख्य बैंक निजी क्षेत्र का आईसीआईसीआई बैंक ही है और उसके पास भी पिछले साल मार्च से ही ऑडिटरों द्वारा इसके पूरे कारोबार के संदेहास्पद होने की जानकारी थी लेकिन उससे भी कोई फर्क नहीं पड़ा। थोड़ा अतीत में जाएं तो हर्षद मेहता से लेकर केतन पारीख के शेयर बाजार फ्रॉड एवं अन्य मामलों में देशी-विदेशी बैंकों की लिप्तता की जानकारी भी जगजाहिर है जिनके विरुद्ध भारतीय सरकार और नियामकों ने कभी कोई कार्रवाई नहीं की है। पिछले दिनों ही सामने आये आईसीआईसीआई बैंक और विडिओकोन के बीच मिलीभगत और बैंक से मिले कर्ज के बदले कम्पनी द्वारा बैंक की मुख्य कार्याधिकारी के परिवार को पहुँचाए गये भारी फायदे के आरोप उपरोक्त विचार की पुष्टि करते हैं, हालाँकि बैंक और मीडिया का एक बड़ा हिस्सा तुरन्त इस मामले की सफाई देने, इसमें कुछ भी गलत न होने और निजी बैंकों में प्रबंधन के उच्च नैतिक सिद्धान्तों-नियमों के प्रचार-बखान में जुट गया है। इसी तरह एयरटेल बैंक द्वारा 40 लाख से अधिक फोन ग्राहकों के फर्जी खाते खोलकर उनका सैंकड़ों करोड़ रूपया उनकी जानकारी के बगैर हासिल कर लेने के वक्त हुआ था और बैंक पर लगाये गये दिखावटी प्रतिबंध भी एक सप्ताह में ही चुपके से हटा लिये गये थे।

इसके अलावा निजी क्षेत्र में भी बैंकों के दिवालिया होने का एक बड़ा लम्बा इतिहास है जिसको कोई धूर्त ही नजरअन्दाज

कर सकता है। यूरोप-अमरीका से शुरू हुए वैश्विक वित्तीय संकट में भी वहाँ के विशाल निजी बैंक ही शामिल थे। वहाँ जब निजी बैंक डूबने लगे तो उनको बचाने के लिए चोर दरवाजे से राष्ट्रीयकरण की माँग उठायी गयी। कई बड़े बैंकों-- रॉयल बैंक ऑफ स्कॉटलैंड, लॉयड्स बैंक, आदि को बचाने के लिए तो राष्ट्रीयकरण करना ही पड़ा। पहले सरकारों द्वारा इन्हें कर्ज दिया गया, बाद में इसे शेयर पूँजी में बदल दिया गया लेकिन बैंक का प्रबंधन निजी हाथों में ही बना रहा। इस 'राष्ट्रीयकरण' का सैंकड़ों अरब डॉलर का सारा बोझ वहाँ की मेहनतकश जनता पर भारी टैक्स लगाकर या "खर्च कटौती" के नाम पर जनता को शिक्षा, स्वास्थ्य, बेरोजगारी भत्ता, आदि की सुविधाओं से वंचित कर अभी भी पूरा किया जा रहा है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि अगर निजी क्षेत्र इतना स्वच्छ और कार्यकुशल होता है तो नीरव मोदी, चोकसी, कोठारी, माल्या, मेहता, द्वारकादास, आदि ये सब तो निजी क्षेत्र के ही कारोबारी हैं, फिर इन्होंने सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों में फ्रॉड क्यों किये?

स्पष्ट है कि बैंकिंग के संकट की इस परिघटना को न तो निजी-सरकारी के आधार पर समझा जा सकता है, न ही कांग्रेस-बीजेपी की नीतियों में भेद के आधार पर, और न ही इन्हें मात्र कुछ अपराधियों द्वारा किये गये फ्रॉड कहकर। इसे समझने के लिए हमें वर्तमान पूँजीवादी व्यवस्था में बैंक, बीमा, आदि वित्तीय क्षेत्र और उद्योग-व्यापार क्षेत्र के पूँजीपतियों के परस्पर सम्बन्धों को समझना चाहिए। पूँजीवादी व्यवस्था में प्रत्येक पूँजीपति को प्रतिद्वंद्विता में टिके रहने, अधिक से अधिक बाजार हासिल करने और अपना अधिकतम मुनाफा सुनिश्चित करने के लिए निरंतर अधिक से अधिक पूँजी के निवेश की आवश्यकता होती है। आज एक ओर तो उत्पादन के प्रत्येक क्षेत्र में पहले ही पूँजी की जकड़बन्दी होने से बाजार के विस्तार की सम्भावनाएँ बहुत सीमित हो चुकी हैं, दूसरी ओर हर उद्योग में कुछ पूँजीपतियों का एकाधिकार कायम हो चुका है। इसलिए दूसरे को पछाड़कर आगे बढ़ने की यह होड़ अत्यंत गलाकाट हो चुकी है। इसलिए सभी पूँजीपतियों के लिए वित्तीय पूँजीपतियों से अधिकाधिक पूँजी प्राप्त कर अपने कारोबार को निरंतर विस्तारित करने का दबाव हमेशा बना रहता है। फिर स्वयं बैंक, बीमा, आदि वित्तीय पूँजीपतियों में भी एकाधिकार की होड़ है और उन्हें भी आवश्यकता है कि वे अपना बाजार हिस्सा बढ़ाने के लिए ज्यादा से ज्यादा कारोबारियों का वित्तीय पोषण कर उनके द्वारा हस्तगत अधिशेष में अपनी हिस्सेदारी और मुनाफा सुनिश्चित करें। दोनों का यह परस्पर हित निश्चित करता है कि बैंक उद्योग-व्यापार की अधिक से अधिक कम्पनियों का कर्ज के विभिन्न रूपों के जरिये वित्तपोषण करते रहें।

इस प्रक्रिया को नीरव मोदी के कारोबार के जरिये भी समझा जा सकता है। मोदी की तीनों कम्पनियों में उसकी अपनी कुल जमा पूँजी बस 400 करोड़ रुपये थी। बैंकों ने उसे 3992 करोड़ का कर्ज दिया हुआ था, ऊपर से अब तक 12700 करोड़ के एलओयू सामने आये हैं। रायटर्स के मुताबिक कुल 20 हजार करोड़ उसे "सरकारी" बैंकों ने दिया था, जिसके बल पर उसका सारा व्यापार, दौलत खड़ी हुई थी। उसकी कम्पनियाँ इस वित्तीय पूँजी के सहारे ही तेजी से विस्तार कर रही थीं और वह दुनिया भर के देशों में अपने नये-नये स्टोर खोल रहा था। वास्तविकता यह है कि उसने कभी कोई कर्ज वापस नहीं किया। बल्कि वह हर बार पहले से बड़ा कर्ज लेता था, जिससे पिछले कर्ज को जमा दिखाया जाता था। इसके बल पर ही वह बड़ा पूँजीपति बना था; इस पूँजी से ही उसका मुनाफा आता था और बैंकों को रुपये तथा विदेशी मुद्रा के कर्ज पर ब्याज तथा एलओयू आदि पर कमीशन मिलता था। यह चक्र जब तक चला तब तक सब सामान्य था, जब टूटा तो इसे फ्रॉड का नाम दिया जा रहा है। यही हाल और सब पूँजीपतियों का भी है। कारखाना लगाने या अन्य बड़े निर्माण के लिए दिये गये कुछ निश्चित अवधि के कर्ज को छोड़कर बैंक अधिकतर कारोबारी कर्ज इसी रूप में देते हैं, जो कहने के लिए तो 3, 6, 9 महीने या एक-डेढ़ साल में चुकाने होते हैं पर कभी चुकाये नहीं जाते, बस ब्याज दिया जाता है, वह भी अक्सर और बड़ा अगला कर्ज लेकर। इसी पूँजी के बल पर सभी पूँजीपति विस्तार करते हैं। पर पूँजीवादी व्यवस्था के अनिवार्य नियम से पूँजीपतियों द्वारा किया गया यह निरंतर विस्तार हर कुछ वर्ष में "अतिउत्पादन" का संकट पैदा करता है क्योंकि अधिकांश जनता की क्रय क्षमता सीमित होने से बाजार माँग से अधिक उत्पादन हो जाता है। तब इन विस्तार करते पूँजीपतियों में से कुछ के लिए यह चक्र टूट जाता है, वे दिवालिया हो जाते हैं, उद्योगों की कब्रगाह में उन्हें दफना दिया जाता है और उनके द्वारा लिये गये कर्ज एनपीए, विलफुल डिफाल्ट, फ्रॉड, आदि के रूप में सामने आते हैं।

पर इससे जब बैंकों के लिए संकट पैदा होता है तो वे सरकारी हों या निजी दोनों दौड़कर सरकारी मदद के लिए ही जाते हैं जो पूँजी, रियायतों, रिजर्व बैंक द्वारा सस्ते कर्ज, आदि विभिन्न रूपों में दी जाती है और इसका बोझ भारी टैक्स, बढ़ी कीमतों और सार्वजनिक सेवाओं में कटौती के जरिये मेहनतकश और निम्नमध्यवर्गीय जनता पर डाला जाता है। भारत में उदारीकरण के दौर में ही लगभग 6 लाख करोड़ रुपये पुनर्पूंजीकरण के रूप में सरकार ने सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों को तो दिये ही हैं, साथ ही जब कोई निजी बैंक भी घाटे में गया है तो उसको या तो सरकारी बैंक में विलय या अन्य माध्यमों के जरिये सरकार ने ही

बचाया है जिसका सारा बोझ आम मेहनतकश जनता के सिर पर पड़ा है। बैंकों के माध्यम से होने वाली यह लूट पूँजीवाद का अभिन्न, अनिवार्य अंग है। बैंक सरकारी या निजी होने से यह चरित्र नहीं बदलता। अमरीका और यूरोप में यही काम निजी बैंकों के जरिये हुआ, कुछ बैंकों का संकट में राष्ट्रीयकरण भी हुआ। भारत में दोनों किस्म के बैंकों के जरिये हो रहा है, सरकारी ज्यादा हैं तो ज्यादा उनके जरिये ही। इस प्रकार बैंक निजी हो तब तो उसका मालिक कोई निजी पूँजीपति होता ही है, बैंक सरकारी हो तब उसके मालिक सब पूँजीपति मिलकर होते हैं, क्योंकि सरकार के मालिक पूँजीपति हैं, उत्पादन के साधनों के मालिक पूँजीपति हैं! निजी और सार्वजनिक क्षेत्र के बीच की बहस पूरी पूँजीवादी व्यवस्था में अन्तर्निहित लूट से ध्यान हटाने के लिए छेड़ी जाती है-- ना तो निजी बैंक लूट में कोई कमी छोड़ते हैं, ना सरकारी। दोनों को घाटा हो तो उसकी भरपाई आम मेहनतकश जनता से ही की जाती है।

पूँजीवाद में निजी पूँजी तो निजी लाभ के लिए होती ही है, सार्वजनिक क्षेत्र भी समाजवादी नहीं बल्कि राजकीय पूँजीवाद ही है जो सामूहिक रूप से पूरे पूँजीपति वर्ग के लाभ के लिए काम करता है। हाँ, इसमें सत्ता वाली पार्टी के करीबियों, लग्गुओं-भग्गुओं को अधिक लाभ प्राप्त होता है। इसे ही आपसी होड़ मे अन्य पूँजीपति क्रोनी पूँजीवाद कह कर आलोचना करते हैं, ताकि पूरी पूँजीवादी व्यवस्था पर चोट न होकर सिर्फ उनके प्रतिद्वंद्वियों पर ही निशाना रहे। पर मार्क्सवादी दृष्टिकोण से देखें तो सारा पूँजीवाद ही लूट पर आधारित है - साफ, ईमानदार, शोषणमुक्त पूँजीवाद कभी भी, कहीं भी होता ही नहीं है। इसीलिए पूँजीवादी व्यवस्था का प्रमुख अंग बैंकिंग भी साफ, ईमानदार, लूट रहित होना मुमकिन नहीं।

# लोकतंत्र के नाम पर लूट को क्या कहिएगा?

**--पुण्य प्रसून बाजपेयी**

| बैंक | कुल फ्राड | बैंक | कुल फ्राड |
|---|---|---|---|
| एसबीआई | 2466 | बैंक आफ बड़ौदा | 782 |
| बैंक आफ इंडिया | 579 | सिंडीकेट बैंक | 552 |
| सेन्ट्रल बैंक आफ इंडिया | 527 | पीएनबी | 471 |
| यूनियन बैंक आफ इंडिया | 368 | इंडियन ओवरसीज बैंक | 342 |
| केनरा बैंक | 327 | ओरियंट बैंक आफ कामर्स | 297 |
| आईडीबीआई | 292 | कारपोरेश बैंक | 291 |
| इंडियन बैंक | 261 | यूको बैंक | 231 |
| यूनियीटेड बैंक आफ इंडिया | 225 | बैंक आफ महाराष्ट्र | 170 |
| आध्रा बैंक | 160 | इलाहबाद बैंक | 130 |
| विजया बैंक | 114 | देना बैंक | 105 |
| पंजाब एंड सिंघ बैंक | 58 | | |

यह बैंकों में हुए फ्रॉड की लिस्ट है। 2015 से 2017 के दौरान हुए बैंक फ्रॉड की यह सूची साफ तौर पर बतलाती है कि कमोबेश हर बैंक में फ्रॉड हुआ। सबसे ज्यादा 2466 स्टेट बैंक में तो 471 पीएनबी में और सभी को जोड़ दें तो कुल 8748 बैंक फ्रॉड बीते तीन बरस में हुए। यानी हर दिन बैंक फ्रॉड के 8 मामले देश में होते रहे। वैसे सरकार की इतनी सफलता जरूर है कि बरस दर बरस बैंक फ्रॉड में इंच भर की कमी जरूर आयी है। मसलन, 2015 में सबसे ज्यादा 3243 बैंक फ्रॉड हुए। तो 2016 में 2789 और 2017 में 2716। पर सवाल सिर्फ बैंक फ्रॉड का नहीं है। सवाल तो यह है कि बैंक से नीरव मोदी, मेहुल चौकसी और माल्या की तर्ज पर कर्ज लेकर ना लौटाने वालों की तादाद का, अरबों रुपया बैंक का बैलेंस शीट से हटाने का और सरकार का बैंकों को कर्ज का अरबों रुपया राइट आफ करने के लिए सहयोग देने का है। यानी सरकार बैंकिंग प्रणाली के उस चेहरे को स्वीकार चुकी है, जिसमें अरबो रुपये का कर्जदार पैसे ना लौटाये। क्योंकि क्रेडिट इनफारमेशन ब्यूरो ऑफ इंडिया लिमिटेड यानी सिबिल के मुताबिक इससे 1,11,738 करोड़ का चूना बैंकों को लग चुका है और 9339 कर्जदार ऐसे हैं जो कर्ज लौटा सकते हैं पर इनकार कर दिया। और पिछले बरस सुप्रीम कोर्ट ने जब इन डिफाल्टरों का नाम पूछा तो रिजर्व बैंक की तरफ से कहा गया कि जिन्होंने 500 करोड़ से ज्यादा का कर्ज लिया है और नहीं लौटा रहे हैं उनके नाम सार्वजनिक करना ठीक नहीं होगा। इससे अर्थव्यवस्था पर असर पड़ेगा। तो ऐसे में सिर्फ बैंकों की उस फेहरिस्त को पढ़िये कि किस बैंक को

कितने का चूना लगा और कर्ज ना लौटाने वाले हैं कितने।

एसबीआई को सबसे ज्यादा 27,716 करोड़ का चूना लगाने में 1665 कर्जदार हैं। पीएनबी को 12,574 करोड़ का चूना लगा है और कर्ज लेने वालों की तादाद 1018 है। इसी तर्ज पर बैंक ऑफ इंडिया को 6,104 करोड़ का चूना 314 कर्जदारों ने लगाया। बैंक ऑफ बड़ौदा को 5,342 करोड़ का चूना 243 कर्जदारों ने लगाया। यूनियन बैंक को 4,802 करोड़ का चूना 779 कर्जदारों ने लगाया। सेन्ट्रल बैंक को 4,429 करोड़ का चूना 666 कर्जदारों ने लगाया। ओरियन्टल बैंक को 4,244 करोड़ का चूना 420 कर्जदारों ने लगाया। यूको बैंक को 4,100 करोड़ का चूना 338 कर्जदारों ने लगाया। आंध्र बैंक को 3,927 करोड़ का चूना 373 कर्जदारों ने लगाया। केनरा बैंक को 3,691 करोड़ का चूना 473 कर्जदारों ने लगाया। आईडीबीआई को 3,659 करोड़ का चूना 83 कर्जदारों ने लगाया। और विजया बैंक को 3,152 करोड़ का चूना 112 कर्जदारों ने लगाया। ऐसे सिर्फ 12 बैंक हैं जिन्होंने जानकारी दी है कि 9339 कर्जदार हैं जो 1,11,738 करोड़ नहीं लौटा रहे हैं। फिर भी इनके खिलाफ कोई कार्रवाई नहीं हुई है, उल्टे सरकार बैंकों की मदद कर रही है कि वह अपनी बैलेंस शीट से अरबों रुपये की कर्जदारी को ही हटा दें। यह सिलसिला कोई नया नहीं है। मनमोहन सरकार के दौर में भी ऐसा होता रहा। पर मौजूदा दौर की सत्ता के वक्त इसमें खासी तेजी आ गयी है। मसलन, 2007-08 से 2015-16 तक यानी 9 बरस में 2,28,253 करोड़ रुपये राइट ऑफ किये गये। तो 2016 से सितम्बर 2017 तक यानी 18 महीने में 1,32,659 करोड़ रुपये राइट ऑफ कर दिये गये। यानी अर्थतंत्र की गाड़ी पटरी से उतर गयी है या कहें कि बैंक से कर्ज लेकर ही बाजार में चमक दमक दिखाने वाले प्रोडक्ट बेचे जा रहे हैं। यह उन कर्जदारों से भी समझा जा सकता है, जिन्होंने कर्ज लिये हैं। वे कर्ज लौटा भी सकते हैं पर लौटा नहीं रहे हैं। और बाजार में अपने ब्रांड के हीरे से लेकर कपड़े, फ्रीज से लेकर दवाई तक बेच रहे हैं।

ऐसे में अगला सवाल यही है कि देश में लोकतंत्र भी क्या रईसों के भ्रष्ट मुनाफे पर टिका है। क्योंकि देश की अर्थव्यवस्था के तौर-तरीके उसी चुनावी लोकतंत्र पर जा टिके हैं जिसके दायरे में चन्दा देने वाले लोग नियम-कायदे से ऊपर होते हों। और राजनीतिक फंड देने वाले ही अधिकतर बैंकों के कर्जदार हैं। तो अगला सवाल यही है कि क्या देश की नीतियाँ कॉरपोरेट तय करता है। और कॉरपोरेट इसलिए तय करता है क्योंकि बीते 12 बरस में हुए तीन लोकसभा चुनाव में 2355 करोड़ रुपये कॉरपोरेट ने चन्दे के तौर पर दिये। और कॉरपोरेट को टैक्स में छूट के तौर पर 40 लाख करोड़ रुपये से ज्यादा राजनीतिक सत्ता ने दिये। तो जरा इस सच को भी समझना जरूरी है कि भारत में चुनाव का शोर ही लोकतंत्र की तस्दीक करता है।

**ऐसे में अगला सवाल यही है कि देश में लोकतंत्र भी क्या रईसों के भ्रष्ट मुनाफे पर टिका है। क्योंकि देश की अर्थव्यवस्था के तौर-तरीके उसी चुनावी लोकतंत्र पर जा टिके हैं जिसके दायरे में चन्दा देने वाले लोग नियम-कायदे से ऊपर होते हों।**

यानी एक तरफ हर नागरिक के लिए एक वोट। तो दूसरी तरफ वोट के लिए राजनीतिक दलों की रैली-हंगामा। पर लोकतंत्र का यह अन्दाज कैसे करोड़ों रुपये प्रचार में बहाता है। राजनीतिक दलों को करोड़ों रुपये कौन देता है। करोड़ों रुपये के दान देने वाले को एवज में क्या मिलता है। इस सवाल पर हमेशा खामोशी बरती गयी। पर जिस तरह बैंकों के जरिये रईसों की लूट अब सामने आ रही है और बैंकों से कर्ज लेकर देश से रफूचक्कर होने का जो हंगामा मचा हुआ है, उस पर पीएम मोदी की खामोशी पर अगर कांग्रेस अध्यक्ष राहुल गांधी अब बैंकों को चूना लगाने वाले रईसों के जरिये राजनीतिक दलों को मिलने वाले चुनावी फंड से जोड़ रहे हैं तो शायद गलत भी नहीं है। क्योंकि चुनावी लोकतंत्र के 70 बरस के दौरान राजनीतिक दलों को मिलने वाली फंडिंग में सबसे ज्यादा इजाफा पिछले लोकसभा चुनाव के दौरान ही हुआ। एडीआर की रिपोर्ट के मुताबिक 2013 से 2015-16 के बीच बीजेपी को 705 करोड़ रुपये कॉरपोरेट-व्यापारिक घरानों से फंडिंग मिली। इस दौरान कांग्रेस को 198 करोड़ रुपये मिले। बीजेपी को मिलने वाली रकम कितनी ज्यादा है यह इसी बात से समझा जा सकता है कि इससे पहले के दो लोकसभा चुनाव यानी 2004 से 2011-12 के बीच कुल कॉरपोरेट फंडिंग ही 378 करोड़ 78 लाख रुपये की हुई। तो यह सवाल हर जहन में उठ सकता है कि जिन्होंने राजनीतिक फंड दिया उसकी एवज में उन्हें क्या मिला। खासकर तब जब बैंकों से कर्ज लेकर अरबों के वारे न्यारे करने वाले कॉरपोरेट उद्योगपतियों की पूरी कतार सामने आ रही है और जो बैंक कर्ज नहीं लौटाते पर फोर्ब्स की लिस्ट में अरबपति होते हैं। नीरव मोदी का नाम भी 2017 की फोर्ब्स लिस्ट में था। तो अगला सवाल यही है कि क्या अर्थव्यवस्था का चेहरा इसी नींव पर टिका है जहाँ सिस्टम ही रईसों के लिए हो। और आखिरी सवाल यही है कि चुनाव पर टिके लोकतंत्र पर निगरानी करने वाले चुनाव आयोग तक के पास राजनीतिक दलों को मिले चन्दे के बारे में पूरी जानकारी तक नहीं है। क्योंकि राष्ट्रीय दल भी नहीं बताते हैं कि उन्हें कितनी रकम कहाँ से मिली। और ना बताने का ये खेल 20 हजार रुपये के फंड की जानकारी ना देने से लेकर फंड के लिए बने कॉरपोरेट बॉण्ड तक से खुल कर उभर रहा है। पर लोकतंत्र ही खामोश है क्योंकि लोकतंत्र का मतलब चुनाव है जो वोटरों से ज्यादा राजनीतिक दलों का खेल है।

*कहानी*

# करोड़पति कैसे होते हैं

**- मक्सिम गोर्की**

संयुक्त राज्य अमरीका के इस्पात और तेल के सम्राटों और बाकी सम्राटों ने मेरी कल्पना को हमेशा तंग किया है। मैं कल्पना ही नहीं कर सकता कि इतने सारे पैसेवाले लोग सामान्य नश्वर मनुष्य हो सकते हैं।

मुझे हमेशा लगता रहा है कि उनमें से हर किसी के पास कम से कम तीन पेट और डेढ़ सौ दाँत होते होंगे। मुझे यकीन था कि हर करोड़पति सुबह छः बजे से आधी रात तक खाना खाता रहता होगा। यह भी कि वह सबसे महँगे भोजन भकोसता होगा-- बत्तखें, टर्की, नन्हे सूअर, मक्खन के साथ गाजर, मिठाइयाँ, केक और तमाम तरह के लजीज व्यंजन। शाम तक उसके जबड़े इतना थक जाते होंगे कि वह अपने नीग्रो नौकरों को आदेश देता होगा कि वे उसके लिए खाना चबायें ताकि वह आसानी से उसे निगल सके। आखिरकार जब वह बुरी तरह थक चुकता होगा, पसीने से नहाया हुआ, उसके नौकर उसे बिस्तर तक लाद कर ले जाते होंगे। और अगली सुबह वह छः बजे जागता होगा अपनी श्रमसाध्य दिनचर्या को दुबारा शुरू करने को।

लेकिन इतनी जबरदस्त मेहनत के बावजूद वह अपनी दौलत पर मिलने वाले ब्याज का आधा भी खर्च नहीं कर पाता होगा।

निश्चित ही यह एक मुश्किल जीवन होता होगा। लेकिन किया भी क्या जा सकता होगा? करोड़पति होने का फायदा ही क्या अगर आप और लोगों से ज्यादा खाना न खा सकें?

मुझे लगता था कि उसके अन्तर्वस्त्र बेहतरीन कशीदाकारी से बने होते होंगे। उसके जूतों के तलुवों पर सोने की कीलें ठुकी होती होंगी और हैट की जगह वह हीरों से बनी कोई टोपी पहनता होगा। उसकी जैकेट सबसे महँगी मखमल की बनी होती होगी। वह कम से कम पचास मीटर लम्बी होती होगी और उस पर सोने के कम से कम तीन सौ बटन लगे होते होंगे। छुट्टियों में वह एक के ऊपर एक आठ जैकेट और छः पतलूनें पहनता होगा। यह सच है कि ऐसा करना अटपटा होने के साथ साथ असुविधापूर्ण भी होता होगा... लेकिन एक करोड़पति जो इतना रईस हो बाकी लोगों जैसे कपड़े कैसे पहन सकता है...

करोड़पति की जेबें एक विशाल गड्ढे जैसी होती होंगी जिनमें वह समूचा चर्च, संसद की इमारत और अन्य छोटी-मोटी जरूरतों को रख सकता होगा। लेकिन जहाँ एक तरफ मैं सोचता था कि इन महाशय के पेट की क्षमता किसी बड़े समुद्री जहाज के गोदाम जितनी होती, होगी मुझे इन साहब की टाँगों पर फिट आने वाली पतलून के आकार की कल्पना करने में थोड़ी हैरानी हुई। अलबत्ता मुझे यकीन था कि वह एक वर्ग मील से कम आकार की रजाई के नीचे नहीं सोता होगा। और अगर वह तम्बाकू चबाता होगा तो सबसे नफीस किस्म का और एक बार में एक या दो पाउण्ड से कम नहीं। अगर वह नसवार सूँघता होगा तो एक बार में एक पाउण्ड से कम नहीं। पैसा अपनेआप को खर्च करवाना चाहता है...

उसकी उँगलियाँ अद्‌भुत तरीके से संवेदनशील होती होंगी और उनमें अपनी इच्छानुसार लम्बा हो जाने की जादुई ताकत होती होगी– मिसाल के तौर पर वह साइबेरिया में अंकुरित हो रहे एक डॉलर पर न्यूयार्क से निगाह रख सकता होगा और अपनी सीट से हिले बिना वह बेरिंग स्टेट तक अपना हाथ बढ़ाकर अपना पसन्दीदा फूल तोड़ सकता होगा।

अटपटी बात यह है कि इस सब के बावजूद मैं इस बात की कल्पना नहीं कर पाया कि इस दैत्य का सिर कैसा होता होगा। मुझे लगा कि वह सिर मांसपेशियों और हड्डियों का ऐसा पिण्ड होता होगा जिसे फकत हर एक चीज से सोना चूस लेने की इच्छा से प्रेरणा मिलती होगी। लब्बोलुआब यह कि करोड़पति की मेरी छवि एक हद तक अस्पष्ट थी। संक्षेप में कहूँ तो सबसे पहले मुझे दो लम्बी लचीली बाँहें नजर आती थीं। उन्होंने ग्लोब को अपनी लपेट में ले रखा था और उसे अपने मुँह की भूखी गुफा के पास खींच रखा था जो हमारी धरती को चूसता-चबाता जा रहा था-- उसकी लालचभरी लार उसके ऊपर टपक रही थी जैसे वह तन्दूर में सिंका कोई स्वादिष्ट आलू हो।

आप मेरे आश्चर्य की कल्पना कर सकते हैं जब एक करोड़पति से मिलने पर मैंने उसे एक निहायत साधारण आदमी पाया।

एक गहरी आरामकुर्सी पर मेरे सामने एक बूढ़ा सिकुड़ा-सा शख्स बैठा हुआ था जिसके झुर्रीदार भूरे हाथ शान्तिपूर्वक उसकी तोंद पर धरे हुए थे। उसके थुलथुल गालों

पर करीने से हजामत बनायी गयी थी और उसका ढुलका हुआ निचला होंठ बढ़िया बनी हुई उसकी बत्तीसी दिखला रहा था जिसमें कुछेक दाँत सोने के थे। उसका रक्तहीन और पतला ऊपरी होंठ उसके दाँतों से चिपका हुआ था और जब वह बोलता था, उस ऊपरी होंठ में जरा भी गति नहीं होती थी। उसकी बेरंग आँखों के ऊपर भौंहें बिल्कुल नहीं थी और सूरज में तपे हुए उसके सिर पर एक भी बाल नहीं था। उसे देखकर महसूस होता था कि उसके चेहरे पर थोड़ी और त्वचा होती तो शायद बेहतर होता या लाली लिए हुए वह गतिहीन और मुलायम चेहरा किसी नवजात शिशु के जैसा लगता था। यह तय कर पाना मुश्किल था कि यह प्राणी दुनिया में अभी अभी आया है या यहाँ से जाने की तैयारी में है...

उसकी पोशाक भी किसी साधारण आदमी की ही जैसी थी। उसके बदन पर सोना उसकी घड़ी, अँगूठी और दाँतों तक सीमित था। कुल मिलाकर शायद वह आधे पाउण्ड से कम था। आम तौर पर वह यूरोप के किसी कुलीन घर के पुराने नौकर जैसा नजर आ रहा था...

जिस कमरे में वह मुझसे मिला उसमें सुविधा या सुन्दरता के लिहाज से कुछ भी उल्लेखनीय नहीं था। फर्नीचर विशालकाय था पर बस इतना ही था।

उसके फर्नीचर को देखकर लगता था कि कभी-कभी हाथी उसके घर तशरीफ लाया करते थे।

"क्या आप... आप... ही करोड़पति हैं?" अपनी आँखों पर अविश्वास करते हुए मैंने पूछा।

"हाँ, हाँ!" उसने सिर हिलाते हुए जवाब दिया।

मैंने उसकी बात पर विश्वास करने का नाटक किया और फैसला किया कि उसकी गप्प का उसी वक्त इम्तहान ले लूँ।

"आप नाश्ते में कितना गोश्त खा सकते हैं?" मैंने पूछा।

"मैं गोश्त नहीं खाता," उसने घोषणा की, "बस सन्तरे की एक फाँक, एक अण्डा और चाय का छोटा प्याला..."

बच्चों जैसी उसकी आँखों में धुँधलाए पानी की दो बड़ी बूँदों जैसी चमक आयी और मैं उनमें झूठ का नामोनिशान नहीं देख पा रहा था।

"चलिए ठीक है," मैंने संशयपूर्वक बोलना शुरू किया। "मैं आपसे विनती करता हूँ कि मुझे ईमानदारी से बताइए कि आप दिन में कितनी बार खाना खाते हैं?"

"दिन में दो बार," उसने ठण्डे स्वर में कहा। "नाश्ता और रात का खाना। मेरे लिए पर्याप्त होता है। रात को खाने में मैं थोड़ा सूप, थोड़ा चिकन और कुछ मीठा लेता हूँ। कोई फल। एक कप कॉफी। एक सिगार..."

मेरा आश्चर्य कद्दू की तरह बढ़ रहा था। उसने मुझे सन्तों की-सी निगाह से देखा। मैं साँस लेने को ठहरा और फिर पूछना शुरू कियाः

"लेकिन अगर यह सच है तो आप अपने पैसे का क्या करते हैं?"

उसने अपने कन्धों को जरा उचकाया और उसकी आँखें अपने गड्ढों में कुछ देर लुढ़कीं और उसने जवाब दियाः

"मैं उसका इस्तेमाल और पैसा बनाने में करता हूँ..."

"किस लिए?"

"ताकि मैं और अधिक पैसा बना सकूँ..."

"लेकिन किसलिए?" मैंने हठपूर्वक पूछा।

वह आगे की तरफ झुका और अपनी कोहनियों को कुर्सी के हत्थे पर टिकाते हुए तनिक उत्सुकता से पूछाः

"क्या आप पागल हैं?"

"क्या आप पागल हैं?" मैंने पलटकर जवाब दिया।

बूढ़े ने अपना सिर झुकाया और सोने के दाँतों के बीच से धीरे-धीरे बोलना शुरू कियाः

"तुम बड़े दिलचस्प आदमी हो... मुझे याद नहीं पड़ता मैं कभी तुम्हारे जैसे आदमी से मिला हूँ..."

उसने अपना सिर उठाया और अपने मुँह को करीब-करीब कानों तक फैलाकर खामोशी के साथ मेरा मुआयना करना शुरू किया। उसके शान्त व्यवहार को देख कर लगता था कि स्पष्टतः वह अपनेआप को सामान्य आदमी समझता था। मैंने उसकी टाई पर लगी एक पिन पर जड़े छोटे-से हीरे को देखा। अगर वह हीरा जूते की एड़ी जितना बड़ा होता तो मैं शायद जान सकता था कि मैं कहाँ बैठा हूँ।

"और अपने खुद के साथ आप क्या करते हैं?"

"मैं पैसा बनाता हूँ।" अपने कन्धों को तनिक फैलाते हुए उसने जवाब दिया।

"यानी आप नकली नोटों का धन्धा करते हैं" मैं खुश होकर बोला मानो मैं रहस्य पर से परदा उठाने ही वाला हूँ। लेकिन इस मौके पर उसे हिचकियाँ आनी शुरू हो गयीं। उसकी सारी देह हिलने लगी जैसे कोई अदृश्य हाथ उसे गुदगुदी कर रहा हो। वह अपनी आँखों को तेज-तेज झपकाने लगा।

"यह तो मसखरापन है," ठण्डा पड़ते हुए उसने कहा और मेरी तरफ एक सन्तुष्ट निगाह डाली। "मेहरबानी कर के मुझसे कोई और बात पूछिए," उसने निमंत्रित करते हुए कहा और किसी वजह से अपने गालों को जरा सा फुलाया। मैंने एक पल को सोचा और निश्चित आवाज में पूछा--

"और आप पैसा कैसे बनाते हैं?"

"अरे हाँ! ये ठीकठाक बात हुई!" उसने सहमति में सिर हिलाया। "बड़ी साधारण-सी बात है। मैं रेलवे का मालिक हूँ। किसान माल पैदा करते हैं। मैं उनका माल बाजार में पहुँचाता हूँ। आपको बस इस बात का हिसाब लगाना होता है कि आप किसान के वास्ते बस इतना पैसा छोड़ें कि वह भूख से न मर जाये और आपके लिए काम करता रहे। बाकी का पैसा मैं किराये के तौर पर अपनी जेब में डाल लेता हूँ। बस इतनी-सी बात है।"

"और क्या किसान इससे सन्तुष्ट रहते हैं?"

"मेरे ख्याल से सारे नहीं रहते!" बालसुलभ साधारणता के साथ वह बोला "लेकिन वो कहते हैं ना, लोग कभी सन्तुष्ट नहीं होते। ऐसे पागल लोग आपको हर जगह मिल जायेंगे जो बस शिकायत करते रहते हैं..."

"तो क्या सरकार आपसे कुछ नहीं कहती?" आत्मविश्वास की कमी के बावजूद मैंने पूछा।

"सरकार?" उसकी आवाज थोड़ा गूँजी फिर उसने कुछ सोचते हुए अपने माथे पर उँगलियाँ फिरायीं। फिर उसने अपना सिर हिलाया जैसे उसे कुछ याद आया हो-- "अच्छा... तुम्हारा मतलब है वो लोग... जो वाशिंगटन में बैठते हैं? ना वो मुझे तंग नहीं करते। वो अच्छे बन्दे हैं... उनमें से कुछ मेरे क्लब के सदस्य भी हैं। लेकिन उनसे बहुत ज्यादा मुलाकात नहीं होती... इसी वजह से कभी-कभी मैं उनके बारे में भूल जाता हूँ। ना, वो मुझे तंग नहीं करते।" उसने अपनी बात दोहरायी और मेरी तरफ उत्सुकता से देखते हुए पूछा--

"क्या आप कहना चाह रहे हैं कि ऐसी सरकारें भी होती हैं जो लोगों को पैसा बनाने से रोकती हैं?"

मुझे अपनी मासूमियत और उसकी बुद्धिमत्ता पर कोफ्त हुई।

"नहीं," मैंने धीमे से कहा "मेरा ये मतलब नहीं था... देखिए सरकार को कभी-कभी तो सीधी-सीधी डकैती पर लगाम लगानी चाहिए ना..."

"अब देखिए!" उसने आपत्ति की। "ये तो आदर्शवाद हो गया। यहाँ यह सब नहीं चलता। व्यक्तिगत कार्यों में दखल देने का सरकार को कोई हक नहीं..."

उसकी बच्चों जैसी बुद्धिमत्ता के सामने मैं खुद को बहुत छोटा पा रहा था।

"लेकिन अगर एक आदमी कई लोगों को बर्बाद कर रहा हो तो क्या वह व्यक्तिगत काम माना जायेगा?" मैंने विनम्रता के साथ पूछा।

"बर्बादी?" आँखें फैलाते हुए उसने जवाब देना शुरू किया। "बर्बादी का मतलब होता है जब मजदूरी की दरें ऊँची होने लगें। या जब हड़ताल हो जाये। लेकिन हमारे पास आप्रवासी लोग हैं। वो खुशी-खुशी कम मजदूरी पर हड़तालियों की जगह काम करना शुरू कर देते हैं। जब हमारे मुल्क में बहुत सारे ऐसे आप्रवासी हो जायेंगे जो कम पैसे पर काम करें और खूब सारी चीजें खरीदें तब सब कुछ ठीक हो जायेगा।"

वह थोड़ा-सा उत्तेजित हो गया था और एक बच्चे और बूढ़े के मिश्रण से कुछ कम नजर आने लगा था। उसकी पतली भूरी उँगलियाँ हिलीं और उसकी रूखी आवाज मेरे कानों पर पड़पड़ाने लगी--

"सरकार? ये वास्तव में दिलचस्प सवाल है। एक अच्छी सरकार का होना महत्त्वपूर्ण है। उसे इस बात का खयाल रहता है कि इस देश में उतने लोग हों जितनों की मुझे जरूरत है और जो उतना खरीद सकें जितना मैं बेचना चाहता हूँ; और मजदूर बस उतने हों कि मेरा काम कभी न थमे। लेकिन उससे ज्यादा नहीं! फिर कोई समाजवादी नहीं बचेंगे। और हड़तालें भी नहीं होंगी। और सरकार को बहुत ज्यादा टैक्स भी नहीं लगाने चाहिए। लोग जो देना चाहें वह ले ले। इसको मैं कहता हूँ अच्छी सरकार।"

"वह बेवकूफ नहीं है। यह एक तयशुदा संकेत है कि उसे अपनी महानता का भान है।" मैं सोच रहा था। "इस आदमी को वाकई राजा ही होना चाहिए... "

"मैं चाहता हूँ," वह स्थिर और विश्वासभरी आवाज में बोलता गया "कि इस मुल्क में अमन-चौन हो। सरकार ने तमाम दार्शनिकों को भाड़े पर रखा हुआ है जो हर इतवार को कम से कम आठ घण्टे लोगों को यह सिखाने में खर्च करते हैं कि कानून की इज्जत की जानी चाहिए। और अगर दार्शनिकों से यह काम नहीं होता तो सरकार फौज बुला लेती है। तरीका नहीं बल्कि नतीजा ज्यादा महत्त्वपूर्ण होता है। ग्राहक और मजदूर को कानून की इज्जत करना सिखाया जाना चाहिए। बस!" अपनी उँगलियों से खेलते हुए उसने अपनी बात पूरी की।

... "और धर्म के बारे में आप का क्या ख्याल है?" अब मैंने प्रश्न किया जबकि वह अपना राजनीतिक दृष्टिकोण स्पष्ट कर चुका था।

"अच्छा!" उसने उत्तेजना के साथ अपने घुटनों को थपथपाया और बरौनियों को झपकाते हुए कहा-- "मैं इस बारे में भली बातें सोचता हूँ। लोगों के लिए धर्म बहुत जरूरी है। इस बात पर मेरा पूरा यकीन है। सच बताऊँ तो मैं खुद इतवारों को चर्च में भाषण दिया करता हूँ... बिल्कुल सच कह रहा हूँ आपसे।"

"और आप क्या कहते हैं अपने भाषणों में?" मैंने सवाल किया।

"वही सब जो एक सच्चा ईसाई चर्च में कह सकता है!" उसने बहुत विश्वस्त होकर कहा। "देखिए मैं एक छोटे चर्च में

भाषण देता हूँ और गरीब लोगों को हमेशा दयापूर्ण शब्दों और पितासदृश सलाह की जरूरत होती है... मैं उनसे कहता हूँ..."

"ईसामसीह के बन्दो! ईर्ष्या के दैत्य के लालच से खुद को बचाओ और दुनियादारी से भरी चीजों को त्याग दो। इस धरती पर जीवन संक्षिप्त होता है-- बस चालीस की आयु तक आदमी अच्छा मजदूर बना रह सकता है। चालीस के बाद उसे फैक्ट्रियों में रोजगार नहीं मिल सकता। जीवन कतई सुरक्षित नहीं है। काम के वक्त आपके हाथों की एक गलत हरकत और मशीन आपकी हड्डियों को कुचल सकती है। लू लग गयी और आपकी कहानी खत्म हो सकती है। हर कदम पर बीमारी और दुर्भाग्य कुत्ते की तरह आपका पीछा करते रहते हैं। एक गरीब आदमी किसी ऊँची इमारत की छत पर खड़े अन्धे आदमी जैसा होता है। वह जिस दिशा में जायेगा अपने विनाश में जा गिरेगा जैसा जूड के भाई फरिश्ते जेम्स ने हमें बताया है। भाइयो, आप को दुनियावी चीजों से बचना चाहिए। वह मनुष्य को तबाह करने वाले शैतान का कारनामा है। ईसामसीह के प्यारे बच्चो, तुम्हारा साम्राज्य तुम्हारे परमपिता के साम्राज्य जैसा है। वह स्वर्ग में है। और अगर तुम में धैर्य होगा और तुम अपने जीवन को बिना शिकायत किये, बिना हल्ला किये बिताओगे तो वह तुम्हें अपने पास बुलायेगा और इस धरती पर तुम्हारी कड़ी मेहनत के परिणाम के बदले तुम्हें ईनाम में स्थायी शान्ति बख्शेगा। यह जीवन तुम्हारी आत्मा की शुद्धि के लिए दिया गया है और जितना तुम इस जीवन में सहोगे उतना ज्यादा आनन्द तुम्हें मिलेगा जैसा कि खुद फरिश्ते जूड ने बताया है।"

उसने छत की तरफ इशारा किया और कुछ देर सोचने के बाद ठण्डी और कठोर आवाज में कहा--

"हाँ, मेरे प्यारे भाइयो और बहनो, अगर आप अपने पड़ोसी के लिए चाहे वह कोई भी हो, इसे कुर्बान नहीं करते तो यह जीवन खोखला और बिल्कुल साधारण है। ईर्ष्या के दैत्य के सामने अपने दिलों को समर्पित मत करो। किस चीज से ईर्ष्या करोगे? जीवन के आनन्द बस धोखा होते हैं; राक्षस के खिलौने। हम सब मारे जायेंगे। अमीर और गरीब, राजा और कोयले की खान में काम करने वाले मजदूर, बैंकर और सड़क पर झाड़ू लगाने वाले। यह भी हो सकता है कि स्वर्ग के उपवन में आप राजा बन जायें और राजा झाड़ू लेकर रास्ते से पत्तियाँ साफ कर रहा हो और आपकी खायी हुई मिठाइयों के छिलके बुहार रहा हो। भाइयो, यहाँ इस धरती पर इच्छा करने को है ही क्या? पाप से भरे इस घने जंगल में जहाँ आत्मा बच्चों की तरह पाप करती रहती है। प्यार और विनम्रता का रास्ता चुनो और जो तुम्हारे नसीब में आता है उसे सहन करो। अपने साथियों को प्यार दो, उन्हें भी जो तुम्हारा अपमान करते हैं..."

उसने फिर से आँखें बन्द कर लीं और अपनी कुर्सी पर आराम से हिलते हुए बोलना जारी रखा--

"ईर्ष्या की उन पापी भावनाओं और लोगों की बात पर जरा भी कान न दो जो तुम्हारे सामने किसी की गरीबी और किसी दूसरे की सम्पन्नता का विरोधाभास दिखाती हैं। ऐसे लोग शैतान के कारिन्दे होते हैं। अपने पड़ोसी से ईर्ष्या करने से भगवान ने तुम्हें मना किया हुआ है। अमीर लोग भी निर्धन होते हैं-- प्रेम के मामले में। ईसामसीह के भाई जूड ने कहा था अमीरों से प्यार करो क्योंकि वे ईश्वर के चहेते हैं। समानता की कहानियों और शैतान की बाकी बातों पर जरा भी ध्यान मत दो। इस धरती पर क्या होती है समानता? आपको अपने ईश्वर के सम्मुख एक-दूसरे के साथ अपनी आत्मा की शुद्धता की बराबरी करनी चाहिए। धैर्य के साथ अपनी सलीब धारण करो और आज्ञापालन करने से तुम्हारा बोझ हल्का हो जायेगा। ईश्वर तुम्हारे साथ है मेरे बच्चो और तुम्हें उसके अलावा किसी चीज की जरूरत नहीं है!"

बूढ़ा चुप हुआ और उसने अपने होंठों को फैलाया। उसके सोने के दाँत चमके और वह विजयी मुद्रा में मुझे देखने लगा। "आपने धर्म का बढ़िया इस्तेमाल किया," मैंने कहा। "हाँ बिल्कुल ठीक! मुझे उसकी कीमत पता है।" वह बोला, "मैं अपनी बात दोहराता हूँ कि गरीबों के लिए धर्म बहुत जरूरी है। मुझे अच्छा लगता है यह। यह कहता है कि इस धरती पर सारी चीजें शैतान की हैं। और ऐ इन्सान, अगर तू अपनी आत्मा को बचाना चाहता है तो यहाँ धरती पर किसी भी चीज को छूने तक की इच्छा मत कर। जीवन के सारे आनन्द तुझे मौत के बाद मिलेंगे। स्वर्ग की हर चीज तेरी है। जब लोग इस बात पर विश्वास करते हैं तो उन्हें सम्हालना आसान हो जाता है। हाँ, धर्म एक चिकनाई की तरह होता है। और जीवन की मशीन को हम इससे चिकना बनाते रहें तो सारे पुर्जे ठीकठाक काम करते रहते हैं और मशीन चलाने वाले के लिए आसानी होती है..."

"यह आदमी वाकई में राजा है," मैंने फैसला किया।

... "शायद आप विज्ञान के बारे में कुछ कहना चाहेंगे?" मैंने शान्ति से सवाल किया।

"विज्ञान?" उसने अपनी एक उँगली छत की तरफ उठायी। फिर उसने अपनी घड़ी बाहर निकाली, समय देखा और उसकी चेन को अपनी उँगली पर लपेटते हुए उसे हवा में उछाल दिया। फिर उसने एक आह भरी और कहना शुरू किया--

"विज्ञान... हाँ मुझे मालूम है। किताबें। अगर वे अमरीका के बारे में अच्छी बातें करती हैं तो वे उपयोगी हैं। मेरा विचार है कि ये कवि लोग जो किताबें-विताबें लिखते हैं बहुत कम पैसा बना पाते हैं। ऐसे देश में जहाँ हर कोई अपने धन्धे में लगा हुआ है किताबें पढ़ने का समय किसी

के पास नहीं है...। हाँ और ये कवि लोग गुस्से में आ जाते हैं कि कोई उनकी किताबें नहीं खरीदता। सरकार को लेखकों को ठीकठाक पैसा देना चाहिए। बढ़िया खाया-पिया आदमी हमेशा खुश और दयालु होता है। अगर अमरीका के बारे में किताबें वाकई जरूरी हैं तो अच्छे कवियों को भाड़े पर लगाया जाना चाहिए और अमरीका की जरूरत की किताबें बनायी जानी चाहिए... और क्या।"

"विज्ञान की आपकी परिभाषा बहुत संकीर्ण है।" मैंने विचार करते हुए कहा।

उसने आँखें बन्द कीं और विचारों में खो गया। फिर आँखें खोलकर उसने आत्मविश्वास के साथ बोलना शुरू किया--

"हाँ, हाँ... अध्यापक और दार्शनिक... वह भी विज्ञान होता है। मैं जानता हूँ प्रोफेसर, दाइयाँ, दाँतों के डाक्टर, ये सब। वकील, डाक्टर, इंजीनियर। ठीक है, ठीक है। वो सब जरूरी हैं। अच्छे विज्ञान को खराब बातें नहीं सिखानी चाहिए। लेकिन मेरी बेटी के अध्यापक ने एक बार मुझे बताया था कि सामाजिक विज्ञान भी कोई चीज है...। ये बात मेरी समझ में नहीं आयी...। मेरे ख्याल से ये नुकसानदेह चीजें हैं। एक समाजशास्त्री अच्छे विज्ञान की रचना नहीं कर सकता। उनका विज्ञान से कुछ लेना-देना नहीं होता। एडीसन बना रहा है ऐसा विज्ञान जो उपयोगी है। फोनोग्राम और सिनेमा-- वह उपयोगी है। लेकिन विज्ञान की इतनी सारी किताबें? ये तो हद है। लोगों को उन किताबों को नहीं पढ़ना चाहिए जिनसे उनके दिमागों में सन्देह पैदा होने लगें। इस धरती पर सब कुछ वैसा ही है जैसा होना चाहिए और उस सबको किताबों के साथ नहीं गड़बड़ाया जाना चाहिए।"

मैं खड़ा हो गया।

"अच्छा तो आप जा रहे हैं?"

"हाँ," मैंने कहा "लेकिन शायद चूँकि अब मैं जा रहा हूँ क्या आप मुझे बता सकते हैं करोड़पति होने का मतलब क्या है?"

उसे हिचकियाँ आने लगीं और वह अपने पैर पटकने लगा। शायद यह उसके हँसने का तरीका था।

"यह एक आदत होती है," जब उसकी साँस आयी तो वह जोर से बोला।

"आदत क्या होती है?" मैंने सवाल किया।

"करोड़पति होना... एक आदत होती है भाई!"

कुछ देर सोचने के बाद मैंने अपना आखिरी सवाल पूछा--

"तो आप समझते हैं कि सारे आवारा, नशेड़ी और करोड़पति एक ही तरह के लोग होते हैं?"

इस बात से उसे चोट पहुँची होगी। उसकी आँखें बड़ी हुईं और गुस्से ने उन्हें हरा बना दिया।

"मेरे खयाल से तुम्हारी परवरिश ठीकठाक नहीं हुई है।" उसने गुस्से में कहा।

"अलविदा," मैंने कहा।

वह विनम्रता के साथ मुझे पोर्च तक छोड़ने आया और सीढ़ियों के ऊपर अपने जूतों को देखता खड़ा रहा। उसके घर के आगे एक लॉन था जिस पर बढ़िया छँटी हुई घनी घास थी। मैं यह विचार करता हुआ लॉन पर चल रहा था कि शुक्र है मुझे इस आदमी से फिर कभी नहीं मिलना पड़ेगा। तभी मुझे पीछे से आवाज सुनायी दी--

"सुनिये!"

मैं पलटा। वह वहीं खड़ा था और मुझे देख रहा था।

"क्या यूरोप में आपके पास जरूरत से ज्यादा राजा हैं?" उसने धीरे-धीरे पूछा।

"अगर आप मेरी राय जानना चाहते हैं तो हमें उनमें से एक की भी जरूरत नहीं है।" मैंने जवाब दिया।

वह एक तरफ को गया और उसने वहीं थूक दिया।

"मैं अपने लिए दो-एक राजाओं को किराये पर रखने की सोच रहा हूँ," वह बोला। "आप क्या सोचते हैं?"

"लेकिन किसलिए?"

"बड़ा मजेदार रहेगा। मैं उन्हें आदेश दूँगा कि वे यहाँ पर मुक्केबाजी करके दिखाएँ..."

उसने लॉन की तरफ इशारा किया और पूछताछ के लहजे में बोला--

"हर रोज एक से डेढ़ बजे तक। कैसा रहेगा? दोपहर के खाने के बाद कुछ देर कला के साथ समय बिताना अच्छा रहेगा... बहुत ही बढ़िया।"

वह ईमानदारी से बोल रहा था और मुझे लगा कि अपनी इच्छा पूरी करने के लिए वह कुछ भी कर सकता है।

"लेकिन इस काम के लिए राजा ही क्यों?"

"क्योंकि आज तक किसी ने इस बारे में नहीं सोचा" उसने समझाया।

"लेकिन राजाओं को तो खुद दूसरों को आदेश देने की आदत पड़ी होती है" इतना कहकर मैं चल दिया।

"सुनिये तो," उसने मुझे फिर से पुकारा।

मैं फिर से ठहरा। अपनी जेबों में हाथ डाले वह अब भी वहीं खड़ा था। उसके चेहरे पर किसी स्वप्न का भाव था।

उसने अपने होंठों को हिलाया जैसे कुछ चबा रहा हो और धीमे से बोला--

"तीन महीने के लिए दो राजाओं को एक से डेढ़ बजे तक मुक्केबाजी करवाने में कितना खर्च आयेगा आपके विचार से?"

# शिक्षा के क्षेत्र में निजीकरण और बेरोजगारी

**- राजेश कुमार**

मेरठ के मनीष ने सत्र 2009-13 में बी टेक किया। पढ़ाई के लिए यूनाइटेड बैंक ऑफ इण्डिया से 3,86,000 रुपये का शिक्षा ऋण लिया था। सितम्बर 2014 में जब नौकरी मिली तो कर्ज बढ़कर 5,65,000 हो गया। तनख्वाह 10,000 रुपये थी और कर्ज की किस्त 12,000 रुपये मासिक। अब उसका नाम डिफाल्टरों की सूची में हैं। रुड़की के अश्विनी ने भारतीय स्टेट बैंक से 3,00,000 रुपये का ऋण लेकर 2014 में मैकेनिकल इंजीनियरिंग की पढ़ाई पूरी की थी। दो साल तक नौकरी नहीं मिली। अश्विनी ने बताया कि बैंक ने पैसे के लिए इतना दवाब बनाया कि पिता ने खेत बेचकर चुकाया। मधुबनी के राहुल कुमार ने पंजाब नेशनल बैंक से 3,50,000 रुपये शिक्षा ऋण लेकर जयपुर के एक निजी संस्थान से 2010 में एमबीए किया। साल भर की बेरोजगारी के बाद पहली नौकरी दिल्ली में दस हजार रुपये की मिली। बकौल, राहुल इतने पैसे में गुजर करना ही मुश्किल था, तो पिता ने किस्तें भरी। किसी भी तरह की दिक्कत से बचने के लिए यहाँ छात्रों के नाम बदल दिये गये हैं। ये तीन घटनाएँ छात्रों की खराब हालत को बयान करने के लिए पर्याप्त हैं।

एनसीआरबी की एक रिपोर्ट के मुताबिक साल 2001 से 2015 के बीच लगभग ढाई लाख शिक्षित युवाओं ने पढ़ाई के दबाव और माँ-बाप के सपनों के आगे हारकर या बेरोजगारी के चलते मौत को गले लगा लिया। नीचे दी गयी सूची से साल-दर-साल छात्रों और नौजवानों के आत्महत्या के बढ़ते ग्राफ को स्पष्ट देखा जा सकता है। इन पन्द्रह सालों में 2 लाख से भी ज्यादा छात्रों-नौजवानों की आत्महत्याएँ चीख-चीखकर व्यवस्था की सच्चाई बयान करती हैं। इससे छात्रों-नौजवानों के बीच फैली निराशा का अन्दाजा सहज ही लगाया जा सकता है।

| अवधि | छात्रों की आत्महत्या | बेरोजगारों की आत्महत्या |
|---|---|---|
| 2001-05 | 27,544 | 48,208 |
| 2006-10 | 32,305 | 46,347 |
| 2011-15 | 39,775 | 49,944 |

उच्च शिक्षा हासिल करके सम्मानजनक जिन्दगी की तलाश में भटक रहे करोडों नौजवान आज हर गली नुक्कड़ पर मारे-मारे फिर रहे हैं। यह व्यवस्था उन्हें सपने तो दिखाती है, उन सपनों को पूरा करने के लिए छात्रों को शिक्षा ऋण भी दे दिया जाता है, लेकिन जब कोर्स खत्म होता है और सपनों में रंग भरने का समय आता है तो पता चलता है कि जो सपने उन्होंने और उनके माँ-बाप ने संजोये हैं, वे इस व्यवस्था में पूरे नहीं हो सकते। चन्द लोगों को तो व्यवस्था अपने साथ सम्मिलित करती है, बाकी को उन्हीं के हाल पर छोड़ देती है। उसके बाद शुरू होता है कभी न खत्म होने वाले संघर्षों का दौर, प्रतियोगिता का दौर।

चार साल शिक्षा ऋण से कोर्स करने के बाद लगता है कि अब कुछ नामी गिरामी कोचिंग संस्थान ही नैया पार लगा सकते हैं। कोर्स के बाद फिर से अपना भाग्य अजमाने, एक हुजूम दिल्ली, बैंग्लोर और चेन्नई जैसे शहरों में उमड़ पड़ता है। जहाँ किसी पीजी के घुटन भरे कमरे में सपनों को फिर से खाद पानी देने के असफल प्रयास शुरू हो जाते हैं। असफल इसलिए क्योंकि किसी भी कोचिंग में सफलता 1 प्रतिशत से ज्यादा नहीं होती। क्योंकि उतनी ही भर्तियाँ होती हैं और 99 प्रतिशत छात्रों के हाथ असफलता ही लगती है। व्यवस्था से बेदखल ये नौजवान अब किसी भी तरह गुजर करने लायक नौकरी की तलाश में निकल पड़ते हैं। इससे पूँजीपति को निर्मम शर्तों पर काम करने वाले पढ़े-लिखे सस्ते मजदूर मिल जाते हैं। देशी-विदेशी पूँजी के लिए यह भीड़ आरक्षित श्रम सेना का काम करती है और पहले से ही काम माँगने वाली लम्बी लाइन को और बढ़ा देती है। सस्ते मजदूरों की यह लम्बी लाइन विदेशी निवेश को चुम्बक की तरह आकर्षित करती है। लेकिन इतना होते हुए भी यह जरूरी नहीं कि सभी को काम मिल ही जाये। इसलिए बेरोजगारी से निराश या खराब सेवा शर्तों पर काम करने वाले नौजवानों की आत्महत्या में वृद्धि होती जा रही है।

कितनी भयावह बात है कि देश में हर घण्टे 2 छात्र मौत को चुन लेते हैं और तीसरा मानसिक रूप से आत्महत्या के लिए तैयार हो जाता है। जबकि व्यवस्था चलाने वाले अपनी सफलता की डींग हाँकते नहीं थक रहे हैं और वे जश्न मना रहे हैं। व्यवस्था पोषक बुद्धिजीवी पढ़े-लिखे नौजवानों को ही नकारा और कम प्रतिभावान सिद्ध करने में सारी ऊर्जा खर्च कर देते हैं। बेरोजगारी

कैंसर से भी जानलेवा संकट है, जिसे वे फोड़े-फुंसी के रूप में प्रस्तुत करते हैं। इस गम्भीर सामाजिक बीमारी का व्यक्तिगत इलाज ढूढ़ते हैं। इनसे शिक्षा ऋण के बोझ तले दबे जा रहे छात्रों के हालत छिपे नहीं हैं, लेकिन वे तथ्यों की अनदेखी कर देते हैं और व्यवस्था के हित में तर्क देने लग जाते हैं। हमें इससे आगे की तस्वीर देखनी होगी। पिछले कुछ सालों में छात्रों द्वारा बैंक से लिये गये कर्ज के क्या हालात हैं?

भारतीय बैंक संघ के अनुसार 2014-17 के बीच शिक्षा ऋण के एनपीए (गैर निस्पादित सम्पति) में 51 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई है। सरकारी बैंकों का कुल बकाया 67,678.50 करोड़ रुपये है। 2001 में शुरू हुई शिक्षा ऋण की योजना डेढ़ दशक में ही लोगों के जी का जंजाल बन गयी है। शिक्षा ऋण का एनपीए 2014 में 3439 करोड़ रुपये था, जो 2017 में बढ़कर 5191 करोड़ रुपये हो गया, यानी तीन साल में 51 प्रतिशत की बढोत्तरी। इस एनपीए बढ़ोत्तरी की वजह अर्थव्यवस्था में छिपी हुई है।

पिछले चार-पाँच साल में अर्थव्यवस्था में निवेश 38 प्रतिशत से घटकर 29 प्रतिशत ही रह गया है। नौकरी बढ़ने की दर इतनी कम हो गयी है कि 2011-12 और 2015-16 के बीच 15 से 29 साल के नौजवानों में कृषि को पेशा बताने वालों की संख्या करीब तीन करोड़ बढ़ गयी है। यह वही लोग हैं जो बीए, एमए, बीएड या आईटीआई, पोलिटेक्निक और बीटेक जैसे व्यवसायिक कोर्स करके नौकरी की उम्मीद लगाये बैठे हैं। लगातार कम होती नौकरियों के कारण समस्या विकराल रूप धारण कर चुकी है। शिक्षा ऋण को पारस पत्थर बताने वाले आज सामने नहीं आते, लगता है कहीं चूहों के बिल में घुस गये हैं।

शिक्षा ऋण की योजना औंधे मुँह गिर गयी है। यह छात्रों और उनके परिवार के लिए तो गले की फाँस बनी हुई है, बैंकों का एनपीए भी बढ़ता ही जा रहा है। नतीजतन, शिक्षा ऋण लेने की दर में भारी गिरावट आयी है और बैंक भी कर्ज देने में टालमटोल करने लगे हैं। इससे देश में उच्च शिक्षा का संकट और गहरा गया है। इसके चलते सरकारी कॉलेजों की सभी सीटें नहीं भर पा रही हैं।

**ऋण नहीं चुकाने वालों में सबसे ज्यादा इंजीनियरिंग और एमबीए डिग्री धारक हैं। क्योंकि ये नौजवान पढ़ाई के बाद नौकरी नहीं मिलने या बेहद मामूली तनख्वाह की नौकरी के कारण ऋण की किस्त भरने में सक्षम नहीं है।**

ऋण नहीं चुकाने वालों में सबसे ज्यादा इंजीनियरिंग और एमबीए डिग्री धारक हैं। क्योंकि ये नौजवान पढ़ाई के बाद नौकरी नहीं मिलने या बेहद मामूली तनख्वाह की नौकरी के कारण ऋण की किस्त भरने में सक्षम नहीं है। केन्द्रीय ब्याज सब्सिडी योजना के तहत जुटाये आँकड़ों से पता चलता है कि करीब 88 प्रतिशत छात्र चार लाख रुपये तक का ऋण लेते हैं। ऋण का 80 प्रतिशत हिस्सा स्नातक की पढ़ाई के लिए होता है, जिसमें 69 प्रतिशत इंजीनियरिंग और मैनेजमेंट की पढ़ाई के लिए है। इनमें से भी 61 प्रतिशत अकेले इंजीनियरिंग का है।

कुछ अर्थशास्त्रियों का मानना है कि "संस्थानों की गुणवत्ता बढ़ाने के साथ-साथ शिक्षा को रोजगार से जोड़कर हम इस स्थिति से उबर सकते हैं।" ये सज्जन भूल जाते हैं कि गुणवत्ता और रोजगार बढ़ाने के नाम पर ही शिक्षा के निजीकरण का मॉडल लागू किया गया था। आज की परिस्थिति इस मॉडल की विफलता का ही परिणाम है। निजीकरण ने रोजगार की समस्याओं के लिए मरहम के बजाय घाव पर नमक छिड़कने का काम किया है। यह बात बॉक्स में दिये गये उदाहरण से आसानी से समझी जा सकती है।

उद्योग संगठन एसोचैम की दिसम्बर 2017 की रिपोर्ट के अनुसार बी श्रेणी बिजनेस स्कूलों से निकलने वाले छात्रों में केवल 20 प्रतिशत को ही रोजगार मिल पा रहा है। 2016 में यह आँकड़ा 30 प्रतिशत था। बिजनेस स्कूलों से केवल 7 प्रतिशत एमबीए डिग्रीधारी ही कोर्स खत्म करने के बाद नौकरी हासिल कर पाते हैं। 2009-10 में डिग्री पूरी होने के बाद 60 प्रतिशत इंजीनियर नौकरी पा जाते थे। आज 60 प्रतिशत को नौकरी नहीं मिल पाती है। जिनको मिलती भी है, उन्हें तकनीकी योग्यता से कम वेतन की नौकरी मिलती है।

एआईसीटीई की वेबसाइट पर मौजूद आँकड़ों के अनुसार, 2013-14 में 17,97,807 छात्रों ने दाखिला लिया था, जो 2017 में कोर्स पूरा करके निकल गये। इनमें से महज 5,07,736 को ही नौकरी मिल पायी। यानी 28 प्रतिशत को नौकरी मिली। 72 प्रतिशत रोजगार की दौड़ में शामिल हो गये या इन्तजार में बाँह फैलाये खड़ी कोचिंग इण्डस्ट्री ने उनको जकड़ लिया। इसी भीड़ में से हर घण्टे में दो लोग मौत को चुन लेते हैं तो वहीं दो से ज्यादा लोग इसमें शामिल हो जाते हैं।

एआईसीटीई के आँकड़े बताते हैं कि 2014-17 के बीच इंजीनियरिंग की 3.11 लाख और मैनेजमेंट की 61 हजार सीटें कम हुई हैं। इन सीटों के कम होने से निजी शिक्षण संस्थानों के मालिकों पर ज्यादा असर नहीं है, वह तो संस्था को ही बेच देते हैं या ज्यादा मुनाफे वाला कोई दूसरा धंधा शुरु कर देते हैं। वहाँ काम कर रहे अध्यापकों, लैब तकनीशियनों, लाइब्रेरियन, माली, स्वीपर, अटेन्डेंट, सुरक्षागार्ड और कैण्टीन चलाने वालों पर इसका बुरा असर होता है। कई कॉलेजों में अध्यापकों की तनख्वाह आधी तक कर दी गयी है या उन्हें कॉलेज से

बाहर का रास्ता दिखा दिया गया है। नये दाखिले की खोज में अध्यापकों को छात्रों को पकड़ने के लिए दूर-दराज के इलाकों में भेजा जाता है। यह काम बहुत अपमानजनक होता है। एक अध्यापक मजबूरी में ही इसे करता है। दाखिला करवाने पर ही उसकी नौकरी टिकी रहती है, अच्छा पढ़ाने पर नहीं। साल भर काम करने के बाद जिन गर्मी की छुट्टियों में अध्यापको को देश-दुनिया घूमने-फिरने का मौका मिलना चाहिए था या उनके लिए प्रशिक्षिण शिविर जैसे कार्यक्रम चलाने चाहिए थे, उन दिनों में ये अध्यापक अपने घर परिवार से दूर अनजान इलाकों में नये दाखिले के लिए एड़ी-चोटी का जोर लगा रहे होते हैं, ताकि अगले साल की उनकी नौकरी पक्की हो सके।

शिक्षा व्यवस्था जैसे गम्भीर मामले को लेकर सरकार की क्या मंशा है? यह शिक्षा के मद में किये जा रहे खर्च से ही स्पष्ट हो जाता है। वर्ष 2014-15 में कुल बजट का 6.15 प्रतिशत शिक्षा के लिए था, वहीं वर्ष 2015-16 में यह घटाकर 5.44 प्रतिशत कर दिया गया, वर्ष 2016-17 में और घटाकर 4.68 प्रतिशत कर दिया गया, अभी यहीं नहीं रुका, वर्ष 2017-18 में और लुढ़ककर यह खर्च 3.71 प्रतिशत पर पहुँच गया और इस बार वर्ष 2018-19 में तो गिरकर 3.48 प्रतिशत के निम्नतर स्तर पर पहुँच गया। शिक्षा बजट में भारी कटौती ही अन्दर ही अन्दर शिक्षा के और ज्यादा निजीकरण को बढ़ावा देना है क्योंकि सरकार शिक्षा की जिम्मेदारी से जितना अपना हाथ पीछे खींचेगी, देश की जनता निजी शिक्षण संस्थानों पर उतना ही निर्भर होती जायेगी। इसलिए यूपीए सरकार की तरह ही यह सरकार भी शिक्षा व्यवस्था को सर्वसुलभ बनाने के बजाय शिक्षा माफियाओं के मुनाफे का साधन बना देने पर आमादा है।

# उत्तर प्रदेश का 'एनकाउंटर राज'

**-- नेहा दीक्षित**

8 अक्टूबर, 2017 को शामली का फुरकान जेल से छूट गया। वह गाँव के एक झगड़े के सिलसिले में विचाराधीन कैदी (अंडरट्रायल) के तौर पर मुजफ्फरनगर जेल में बन्द था। मुजफ्फरनगर पुलिस के मुताबिक, फुरकान पर 36 मामले थे और उस पर 50,000 रुपये का इनाम था। फुरकान को जब शामली जिले के तीतरवाड़ा गाँव में गिरफ्तार किया गया उस वक्त उसकी उम्र 33 साल थी और वह आरा मशीन की एक स्थानीय इकाई में काम करता था। गाँव वालों ने उसे बताया कि एक सप्ताह पहले फुरकान के मामले में सुलह कराने के लिए पुलिस शिकायतकर्ताओं से बातचीत करने आयी थी। इसके बाद ही यह रिहाई हुई। दो सप्ताह बाद, 23 अक्टूबर, 2017 को फुरकान एक 'एनकाउंटर' में पुलिस की गोली से मारा गया। पुलिस ने फुरकान के पास से कई बन्दूकें और गोलियां मिलने का भी दावा किया है। पुलिसवाले खुद से उसकी रिहाई के लिए बातचीत करने के लिए क्यों आये थे। यह बात पुलिस के दावों को संदेहास्पद बनाती है। जैसा कि आमतौर पर होता है कि पुलिस ने इस 'एनकाउंटर' को आत्मरक्षा में की गयी गोलीबारी के तौर पर पेश किया।

फुरकान के सभी पाँच भाई अभी चोरी और डकैती के विभिन्न आरोपों में जेल में हैं। सबसे छोटे फरमीन ने शारीरिक यंत्रणा दिये जाने का आरोप लगाया है- मुजफ्फरनगर जेल में उसके गुप्तांगों में बिजली का करंट लगाये जाने के बाद वह बीमार पड़ गया है। अब परिवार में एकमात्र कमानेवाले मीर हसन यानी इनके पिता हैं, जो रिक्शा चलाने का काम करते हैं। अगर इस परिवार में ऐसे कुख्यात अपराधी भरे हुए हैं, तो इसके पास दो वक्त पेट भरने लायक पैसा भी क्यों नहीं है?

एक अन्य घटना में शामली के बँटा गाँव में चाउमिन और समोसा बेच कर गुजारा करनेवाला असलम 9 दिसम्बर, 2017 को नोएडा के दादरी में पुलिस की गोली से मारा गया।

फल विक्रेता इकराम ऐसे गैंग का सदस्य था जिसका अस्तित्व ही नहीं है। 10 अगस्त, 2017 को बागपत के बड़ौत इलाके के इस 40 वर्षीय फल विक्रेता की मृत्यु शामली में पुलिस की गोली लगने से हुई। पुलिस का दावा है कि उन्हें यह सूचना मिली थी कि वह एक मोटर साइकिल, 8,700 रुपये, एक सोने की चेन और एक सोने की अंगूठी लेकर भागा था। जब उन्होंने, इकराम को शामली की बंजारा बस्ती के पास रोकने की कोशिश की, तब उसने उन पर गोलियाँ बरसानी शुरू की दी। जवाब में, पुलिस की तरफ से भी गोलियां चलायी गयीं। मेरठ मेडिकल कॉलेज लेकर आने पर उसे मृत घोषित कर दिया गया। पुलिस ने इकराम के पास से एक 32 बोर पिस्तौल और सात जिन्दा कारतूस बरामद करने का भी दावा किया।

पुलिस का यह भी दावा है कि इकराम के खिलाफ 13 आपराधिक मामले थे। उनके बेटे साजिद का कहना है कि सच्चाई यह है कि उनके खिलाफ सिर्फ दो मामले थे, वे भी 20 साल पुराने थे, जब इकराम के भाई को पुलिस ने मार गिराया था।

20 वर्षीय सुमित गुर्जर को पुलिस ने 30 सितम्बर, 2017 को बागपत के चिरचिटा गाँव से उठा लिया। उसके पिता करण सिंह का कहना है कि उनके बेटे को 'नगद इनाम और प्रमोशन के लिए' मार दिया गया। पिता ने बताया, '2 अक्टूबर को हमें नोएडा पुलिस को 3.5 लाख रुपये देने के लिए कहा गया। उन्होंने कहा कि वे चालान

काटेंगे और उसे जाने देंगे।' जब वे नोएडा में इकोटेक पुलिस स्टेशन पहुँचे, जहाँ जानकारी के मुताबिक सुमित को रखा गया था, तब पुलिस अपनी बात से पलट गयी। तब तक उन्हें इन अफवाहों का पता लग गया था कि सुमित को जल्द ही एक एनकाउंटर में मार दिया जायेगा। परिवार ने बिना समय गँवाये, डीआईजी यूपी पुलिस, एनएचआरसी (मानवाधिकार आयोग), मुख्यमंत्री कार्यालय का दरवाजा खट-खटकाया, लेकिन उसकी गुहार कहीं नहीं सुनी गयी। उसी शाम, नोएडा पुलिस ने सुमित पर 25,000 रुपये का इनाम रखा, जिसे कुछ घंटों के भीतर ही बढ़ाकर 50,000 रुपये कर दिया गया। अगली शाम ग्रेटर नोएडा पुलिस ने ऐलान किया कि सुमित द्वारा चलाई जा रही एक गाड़ी को रोकने की कोशिश के दौरान दोतरफा गोलीबारी में सुमित की मौत हो गयी। ग्रेटर नोएडा के एसएसपी लव कुमार ने कहा कि पुलिस डकैती और जबरन वसूली के कई मामलों में सुमित की तलाश कर रही थी।

सुमित के खिलाफ कोई आपराधिक मामला दर्ज नहीं था। गाँव में एक और सुमित गुर्जर है, जो शीशराम का बेटा है। उसके खिलाफ 2011 में छह मामले चल रहे थे। राज का कहना है, 'ये ठीक वही मामले हैं, जिनका आरोप एनकाउंटर के बाद मेरे भाई पर लगाया गया। तो क्या इसका मतलब है कि पुलिस ने सुमित को कोई और तो नहीं समझ लिया।' विरोध में परिवार ने सुमित के शव का तीन दिन तक अन्तिम संस्कार नहीं किया। गुर्जर महापंचायत ने इस मामले की जाँच सीबीआई से कराने और पुलिस के खिलाफ कार्रवाई करने की माँग की है। एनएचआरसी ने इस मामले का संज्ञान लेते हुए, उत्तर प्रदेश सरकार और उत्तर प्रदेश पुलिस को नोटिस जारी किया और चार दिनों के भीतर जवाब देने के लिए कहा।

2017 के सितम्बर में, गरीब परिवारों से आनेवाले ऐसे पाँच विचाराधीन आरोपी, जिन्होंने एक लम्बा वक्त जेलों में बिताया था, पुलिस एनकाउंटर में मारे गये। इनमें नदीम (30) और जान मोहम्मद (24) मुजफ्फरनगर से, शमशाद (35) और मंसूर (35) दोनों सहारनपुर से और वसीम (17) शामली से था।

हत्या की कोशिश में साढ़े तीन साल सहारनपुर जेल में बन्द 35 वर्षीय मंसूर को बार-बार बिजली के झटके देकर यंत्रणा दी जाती थी। इसने उसकी दिमागी हालत खराब कर दी। रिहाई के बाद करीब डेढ़ साल वह विक्षिप्त अवस्था में सहारनपुर के पठानपुर गाँव में अपने परिवार के साथ रहा। 28 सितम्बर, 2017 के दोपहर में तीन पुलिस वाले सादे कपड़ों में पहुँचे और उसे एक कार में लेकर गये। उसी शाम मेरठ पुलिस ने घोषणा करते हुए बताया कि उसकी तलाश 25 मामलों में थी और उसे पल्लवपुरम इलाके में मार गिराया गया।

8 सितम्बर, 2017 को नदीम की मृत्यु गोली लगने से हो गयी। उसने अपने 30 साल के जीवन का एक तिहाई हिस्सा जेल में बिताया, जिस कारण वह कभी स्कूल नहीं जा पाया।

नदीम के एनकाउंटर से ठीक चार दिन बाद, 12 सितम्बर को सहारनपुर के शेरपुर गाँव के 35 वर्षीय शमशाद को भी पुलिस ने उसी से मिलती-जुलती परिस्थितियों में मार गिराया। शमशाद लोहे के ग्रिल वगैरह बनाने का काम करता था और पिछले दो सालों से देवबन्द जेल में बन्द था। पुलिस के मुताबिक, उसके खिलाफ लूट और चोरी के कई मामले चल रहे थे और वह 8 सितम्बर, 2017 को पुलिस की हिरासत से फरार हो गया था।

22 साल का जान मोहम्मद 19 सितम्बर, 2017 को एक एनकाउंटर में गोली लगने से मरा। जान मोहम्मद कार चलाते हुए मारा गया, जबकि वह कार चलाना नहीं जानता था। पुलिस के मुताबिक उसके खिलाफ लूट, चोरी और हत्या का प्रयास के 22 मामले दर्ज थे और उसके सिर पर 12,000 का इनाम था।

शामली जिले का रहनेवाले साबिर को 2 जनवरी, 2018 को पुलिस ने उसके ही घर में मार गिराया। पुलिस को हत्या, सेंधमारी, रंगदारी और डकैती के कई मामलों में साबिर की तलाश थी और वह मई, 2017 में पुलिस की हिरासत से भाग गया था। शूटआउट में पुलिस कॉन्स्टेबल अंकित तोमर की भी जान गयी। पुलिस ने वारदात स्थल से हथियार भी बरामद किया। एनकाउंटर के बाद कई पुलिस वालों ने मिलकर घर के सभी दरवाजे तोड़ डाले। कमरों के भीतर रखे सामानों को तहस-नहस कर दिया, फर्नीचर तोड़ डाला, कपड़ों को जला डाला और पूरे परिसर नष्ट कर दिया। एनकाउंटर के बाद पुलिस साबिर के 14 पुरुष रिश्तेदारों को भी पकड़ कर ले गयी। अब उसका परिवार एक अन्य रिश्तेदार के घर में रह रहा है, क्योंकि उसके घर को पूरी तरह से तबाह कर दिया गया है।

शामली में जहाँपुरा गाँव के 17 वर्षीय वसीम की गलती यह थी कि वह एक कुख्यात गैंगस्टर का भाई था। वसीम के घर के साथ भी यही हुआ। वह भी 29 सितम्बर, 2017 को एनकाउंटर में पुलिस के हाथों मारे जाने से सिर्फ पाँच दिन पहले। वसीम 22 साल के मुकीम काला का भाई है, जिसे पश्चिमी यूपी के सबसे खतरनाक गैंगस्टर के तौर पर जाना जाता है। जब हुकुम सिंह ने कैराना पलायन विवाद को उठाया था, उस समय इसका कारण मुकीम काला गैंग द्वारा जबरन वसूली को माना गया था।

चूँकि ये परिवार सामाजिक-आर्थिक संसाधनों के हिसाब से कमजोर होते हैं, इसलिए पुलिस की ऐसी कार्रवाई वास्तव में यह प्रदर्शित करने के लिए की जाती है कि उन्हें सजा मिलने का कोई खौफ नहीं है और उन्हें राजनीतिक वरदहस्त हासिल है।

दावत पर गये सरवर और नौशाद को मार गिराया गया। सरवर 11 साल की उम्र से ही दिहाड़ी मजदूर के तौर पर काम किया करता था और पिता की मृत्यु के बाद से वह अपने 8 सदस्यों के परिवार का अकेला पेट भरने वाला था। नौशाद अपनी पारिवारिक जमीन पर खेती करता था। शूटआउट की शाम सरवर और नौशाद दोनों को यास्मीन

उर्फ रानो के घर पर रात के खाने पर बुलाया गया था। परिवार वालों के मुताबिक दोनों ही जाने से हिचकिचा रहे थे, क्योंकि काफी रात हो चुकी थी। लेकिन, रानो खुद उनके घर आ गयी और थोड़ी देर के लिए भी आने के लिए जिद करने लगी। अगले दिन सुबह चार बजे के करीब यह खबर फैल गयी कि सरवर और नौशाद एक एनकाउंटर में पुलिस के हाथों मारे गये हैं। पुलिस ने यह दावा किया कि पुलिस इन दोनों की तलाश हत्या, डकैती और जबरन वसूली के मामलों में कर रही थी और दोतरफा गोलीबारी में वे मारे गये।

28 वर्षीय शमीम भी ऐसी ही परिस्थितयों में मारा गया। वह मुजफ्फरनगर के सिसोनी गाँव में राज मिस्त्री के तौर पर काम किया करता था। उस पर तीन साल पहले मोटरसाइकिल और मोबाइल फोन चोरी करने को लेकर एक मामला दर्ज किया गया था। इन आरोपों के चलते उसने मुजफ्फरनगर जेल में दस दिन और देवबन्द जेल में एक सप्ताह बिताया था। उसके पिता फकरू का कहना है, 'एनकाउंटर के दिन 6 बजे शाम में एक औरत का फोन आया। उसने कहा कि यह अर्जेंट है।'

द वायर ने ऐसे 14 परिवारों से मुलाकात की, जिनका कोई सदस्य इस दौरान पुलिस एनकाउंटर में मारा गया। मारे गये 14 लोगों में से 13 मुस्लिम थे। वे कई मामलों में विचाराधीन आरोपी थे। इनमें से हर एनकाउंटर से ठीक पहले, पुलिस को उनकी किसी जगह मौजूदगी का सुराग मिला था। इन सबमें वे या तो बाइक पर थे या कार में। जैसे ही पुलिस उनको रोकने की कोशिश करती है, वे गोलियां चलाना शुरू कर देते हैं। जवाबी गोलीबारी में आरोपी गोली से जख्मी हो जाता है और अस्पताल पहुँचने पर उन्हें मृत घोषित कर दिया जाता है। ज्यादातर मामलों में पुलिस ने 32 बोर पिस्तौल और जिन्दा कारतूसों को बरामद किया है। हकीकत यह है कि मारे गये इन लोगों में से कोई भी यूपी पुलिस के आईजी क्राइम ऑफिस द्वारा जारी किये गये 'मोस्ट वॉन्टेड' की सूची में नहीं था। इन विरोधाभासों ने 'एनकाउंटर' के इन सभी मामलों में अनायास ही दोतरफा गोलीबारी के अलावा भी कुछ और होने की सम्भावना को जन्म दिया है। वास्तव में मारे गये लोगों के परिवारों का आरोप है कि ये घटनाएँ पूर्वनियोजित थी।

जून, 2017 में इंडिया टीवी को दिये गये एक इंटरव्यू में उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री आदित्यनाथ ने कहा था, 'अगर अपराध करेंगे, तो ठोक दिये जायेंगे।' भले यह एक बड़बोलेपन से भरा हुआ बयान हो, लेकिन आदित्यनाथ के मन में पक रहा विचार उन कानूनों की धज्जियाँ उड़ानेवाला था, जिसकी रक्षा करने की उन्होंने शपथ ली थी। क्या इन 'एनकाउंटरों' की पटकथा तभी से तैयार की जा रही थी?

इस मामले में अगर याद करें तो 2012 के एक ऐतिहासिक केस में सुप्रीम कोर्ट ने यह कहा था-- 'सिर्फ इसलिए कि कोई आरोपी खतरनाक अपराधी है, पुलिस को उसे जान से मार देने का अधिकार नहीं मिल जाता। पुलिस का काम आरोपी को गिरफ्तार करना और उस पर मुकदमा चलाना है। इस अदालत ने बार-बार बन्दूक का ट्रिगर दबाने में आनंद पानेवाले पुलिस वालों को चेतावनी दी है, जो अपराधियों को मार गिराने के बाद घटना को एनकाउंटर का नाम दे देते हैं।

13 जून, 2016 को तत्कालीन भाजपा सांसद और मुजफ्फरनगर दंगों के आरोपी हुकुम सिंह ने दावा किया था कि कुल मिलाकर 346 परिवारों को 'एक खास समुदाय' द्वारा जबरन वसूली और धमकियाँ दिये जाने के चलते कैराना छोड़ने पर मजबूर होना पड़ा। उनका अप्रत्यक्ष इशारा उस इलाके के मुसलमानों की तरफ था। बाद में वे पलायन की सांप्रदायिक प्रकृति की बात से पलट गये और इसके लिए 'अपराध' को जिम्मेदार ठहराया। 2011 की जनगणता के मुताबिक कैराना की 68 फीसदी आबादी मुस्लिम है और शहर के अपराधों को यहाँ की धार्मिक आबादी से जोड़ना बाँटने की राजनीति करनेवालों वालों का पुराना प्रोपगेंडा रहा है। फरवरी, 2017 में भाजपा ने 'कैराना' पलायन का इस्तेमाल उत्तर प्रदेश विधानसभा के लिए चुनाव प्रचार के दौरान किया और बदतर कानून-व्यवस्था की स्थिति-- कैराना को जिसके प्रतीक के तौर पर पेश किया गया था-- को ठीक करने का वादा किया। नवम्बर, 2017 में आदित्यनाथ ने कहा था कि भाजपा सरकार ने उत्तर प्रदेश में कानून का शासन कायम कर दिया है और 'कैराना जैसी घटना' अब फिर नहीं होगी।

2014 के लोकसभा चुनाव में दिये गये हलफनामे के मुताबिक आदित्यनाथ पर 15 के करीब आपराधिक मामले चल रहे थे, जिनमें हत्या की कोशिश, आपराधिक धमकी और दंगे कराने के अपराध शामिल हैं। रिहाई मंच के अध्यक्ष मोहम्मद शोएब कहते हैं, 'योगी आदित्यनाथ कहते हैं कि सभी अपराधियों को उत्तर प्रदेश छोड़ देना चाहिए, इसकी पहल उन्हें खुद से करनी चाहिए, क्योंकि राज्य के सभी विचाराधीन आरोपियों को अपराधी घोषित कर दिया गया है और वे भी इनमें से ही आते हैं।'

16 सितम्बर, 2017 को यूपी पुलिस ने राज्य में आदित्यनाथ सरकार के छह महीने पूरे करने के मौके पर आधिकारिक आँकड़े जारी किये। पुलिस ने कहा कि इसने कथित अपराधियों के खिलाफ 420 एनकाउंटरों को अंजाम दिया, जिसमें 15 लोग मारे गये। यूपी सरकार के आँकड़ों के मुताबिक, जनवरी 2018 तक पुलिस ने 1,038 एनकाउंटर किये थे। इनमें 32 लोग मारे गये थे और 228 घायल हुए थे। इनमें पुलिस के चार जवानों को भी अपनी जान गँवानी पड़ी। इन एनकाउंटरों में मारे जाने वालों में सबसे ज्यादा लोग पश्चिमी उत्तर प्रदेश के चार जिलों- शामली, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर और बागपत के हैं। इन आरोपों के मद्देनजर इन एनकाउंटरों में से कुछ वास्तव में हिरासत में की गयी न्यायेतर हत्याएँ हो सकती हैं। बीते दस महीनों में उत्तर प्रदेश पुलिस ने औसतन प्रतिदिन 4 एनकाउंटर किये हैं।

16 सितम्बर, 2017 को एडीजी (कानून और व्यवस्था) आनन्द कुमार ने कहा कि एनकाउंटर 'सरकार की इच्छा,

लोगों की उम्मीदों और पुलिस को दी गयी संवैधानिक और कानूनी शक्ति को ध्यान में रखकर' किये जा रहे हैं। उसी दिन यूपी पुलिस के कम्युनिकेशन डिपार्टमेंट ने पुलिस के मनोबल को बढ़ाने के लिए यह घोषणा कर दी कि यूपी पुलिस ने अपराधियों को पकड़ने पर विभिन्न रैंकों के पुलिसकर्मियों और अधिकारियों के लिए इनाम की राशि को बढ़ा दिया है। मुख्य सचिव गृह एवं पुलिस रैंक के लिए इनाम को 2,50,000 से बढ़ाकर 5,00,000 रुपये प्रति गिरफ्तारी, पुलिस अधीक्षक के लिए इसे 50,000 से बढ़ाकर 2,50,000 रुपये कर दिया गया। इसी तरह अन्य रैंकों के लिए इनाम राशि को बढ़ा दिया गया। एनडीटीवी की रिपोर्ट के अनुसार सरकार ने 'जिला पुलिस प्रमुख को एनकाउंटर को अंजाम देनेवाली पुलिस टीम के लिए 1 लाख रुपये तक का इनाम देने की घोषणा करने की अनुमति भी दी है।'

नेशनल क्राइम रिकार्ड ब्यूरो के 2015 के जेल सम्बन्धी आँकड़ों के मुताबिक, जेल में बन्द दो तिहाई कैदी विचाराधीन अपराधी यानी अंडरट्रायल हैं। देशभर में 55 प्रतिशत विचाराधीन कैदी या तो मुस्लिम हैं या दलित हैं या आदिवासी हैं। चूंकि मुस्लिम, दलित और आदिवासी मिलाकर देश की आबादी का 39 प्रतिशत ही हैं, इसलिए यह साफ दिखाई देता है कि विचाराधीन कैदियों में उनकी संख्या उनकी आबादी के हिसाब से गैर-आनुपातिक ढंग से ज्यादा है। मुस्लिमों में, दोषसिद्ध आरोपियों में उनका अनुपात 15.28 प्रतिशत है, जो कि कुल आबादी में उनके हिस्से से थोड़ा सा ही ज्यादा है, लेकिन विचाराधीन कैदियों में उनका हिस्सा 20.9 प्रतिशत है, जो कहीं ज्यादा है। इसी आँकड़े से यह भी पता चलता है कि उत्तर प्रदेश में कुल दोषी करार दिये गये अपराधियों में मुस्लिमों की हिस्सेदारी 19 प्रतिशत है, जो राज्य में उनकी आबादी के अनुपात के बराबर ही है। लेकिन, विचाराधीन आरोपियों में, मुस्लिमों की हिस्सेदारी 27 प्रतिशत है, जो कि आबादी में उनके अनुपात की तुलना में काफी ज्यादा है।

सुप्रीम कोर्ट के एक फैसले में कहा गया है कि संविधान का अनुच्छेद 21 कैदियों को उनके प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता के मूल अधिकार के तहत निष्पक्ष और त्वरित सुनवाई का अधिकार देता है। लेकिन, विचाराधीन कैदियों की एक बहुत बड़ी संख्या सामाजिक-आर्थिक रूप से वंचित पृष्ठभूमि से ताल्लुक रखती हैं, जिन पर छोटे-मोटे अपराधों का आरोप है, मगर जिन्हें कानूनी मदद हासिल नहीं है।

यह कोर्ट में अपना बचाव करने की उनकी क्षमता को कमजोर करता है, जिसका नतीजा अक्सर यह होता है कि उन्हें जेल में लम्बा वक्त गुजारना पड़ता है।

एक आरटीआई सवाल के जवाब में यह बताया कि 2000 से 2017 के बीच भारत में 1,782 फर्जी एनकाउंटर के मामले दर्ज किये गये। एनएचआरसी को मिली शिकायतों और सूचनाओं के आधार पर तैयार आँकड़ों के मुताबिक सभी राज्यों में मिलाकर दर्ज किये गये एनकाउंटर के मामलों में से 44.55 प्रतिशत यानी करीब 794 मामले सिर्फ उत्तर प्रदेश में दर्ज किये गये, जो काफी खतरनाक है। एनएचआरसी ने अलग से यह नहीं बताया है कि इन आरोपों में से कितने सही पाये गये, लेकिन यूपी से आये 160 मामलों में बतौर मुआवजा 9.47 करोड़ रुपये देने की सिफारिश की। गौरतलब है कि देश भर में इसने 314 मामलों में मुआवजा दिये जाने की गुहार की। यानी मुआवजा देने की सिफारिश करने वाले मामलों में से आधे से ज्यादा सिर्फ उत्तर प्रदेश से थे।

नौ महीनों में आदित्यनाथ सरकार को एनएचआरसी की तरफ से एनकाउंटर, महिला उत्पीड़न और गोरखपुर के एक अस्पताल में बच्चों की मौत समेत विभिन्न मसलों पर नौ नोटिस मिल चुके हैं। 22 नवम्बर, 2017 को आदित्यनाथ के इस बयान पर कि 'अपराधियों को या तो जेल में डाल दिया जायेगा या एनकाउंटरों में उन्हें मार गिराया जायेगा', एनएचआरसी ने उत्तर प्रदेश के मुख्य सचिव को नोटिस भेजकर इस मामले में विस्तृत रिपोर्ट भेजने के लिए कहा--

'अगर कानून-व्यवस्था की हालत खराब है, तो भी सरकार ऐसे तरीकों को इस्तेमाल में नहीं ला सकती है, जिसका अंजाम कथित अपराधियों की न्यायेतर हत्याओं के तौर पर सामने आता हो। किसी सभ्य समाज के लिए जीवन के अधिकार और कानून के सामने समानता के अधिकार का उल्लंघन करनेवाली राज्य की कुछ नीतियों के कारण जन्म लेनेवाले डर का माहौल बनाना अच्छा नहीं है।'

कई पत्रकारों ने तो मुजफ्फरनगर और शामली में पुलिस द्वारा एनकाउंटरों की लाइव रिकॉर्डिंग भी की है। यह अपराधियों के अचानक या संयोगवश सामने आ जाने के आधिकारिक दावे पर सवाल खड़े करता है और कई एनकाउंटरों की पूर्वनियोजित प्रकृति की ओर संकेत करता है।

न्यायेतर हत्याओं पर सुप्रीम कोर्ट के 2014 के दिशा-निर्देशों के मुताबिक, 'अगर सुराग मिलने पर या इंटेलिजेंस से कोई सूचना मिलने पर की गयी कार्रवाई में एनकाउंटर होता है और पुलिस दल द्वारा आग्नेयास्त्रों (फायर आर्म्स) का इस्तेमाल किया जाता है और उसके परिणामस्वरूप जान जाती है, तो इस सम्बन्ध में एफआईआर दर्ज की जायेगी और उसे कोड की धारा 157 के तहत कोर्ट को अविलम्ब भेजा जायेगा।'

ऐसा लगता है कि पुलिस द्वारा की गयी हत्याओं की वैधानिकता की जाँच करने के लिए इस दिशा निर्देश को ईमानदारी से लागू नहीं किया गया है। मजिस्ट्रेट जाँचों में शायद ही कभी किसी मुठभेड़ को फर्जी घोषित किया जाता है।

**(यह लेख द वायर में छपी स्वतंत्र पत्रकार नेहा दीक्षित की रिपोर्ट का संक्षिप्त रूप है। हम इसके लिए द वायर के आभारी हैं।)**

# इंजीनियरिंग के पाठ्यक्रम में बदलाव

**--ज्ञानेन्द्र**

इंजीनियरिंग की पढ़ाई एक ऐसी पढ़ाई है जो निजीकरण और वैश्वीकरण के दौर में कमाई का बड़ा जरिया मानी जाती है। गरीब माँ-बाप सोचते हैं कि अगर कर्ज-उधार करके किसी तरह बेटे-बेटी को इंजीनियर बना दें तो घर की स्थिति सुधर जाये, उनका कायापलट हो जाये। सामाजिक हैसियत रातोंरात बदल जाये। इसी सपने को अपने मन में लिये शहरों के दड़बानुमा कमरों में रहकर बहुत से नौजवान कर्ज ले रहे हैं और उनके माँ-बाप साहूकारों या बैंकों का चक्कर काट रहे हैं।

इस सपने को दुहने के लिए 90 के दशक में सरकार ने निजी क्षेत्र को खुली छूट दे दी। कुकुरमुत्तों की तरह जगह-जगह इंजीनियरिंग कॉलेज उग आये और इन सपनों की फसल उतारने लगे। निजी कॉलेजों पर किसी भी प्रकार का अंकुश नहीं था। ज्यादा से ज्यादा मुनाफा सुनिश्चित करने के लिए डोनेशन लेकर एडमिशन देना, भारी फीसें वसूलना, अयोग्य और अस्थाई शिक्षक रखना, नॉन अटेंडिंग एडमिशन (जिसमें क्लास लगाने की जरूरत नहीं होती) करना, परीक्षा केन्द्रों पर नकल की खुली छूट, प्रयोगशालाओं की भारी कमी आज इन निजी संस्थाओं की आम हकीकत है। इन सबके बावजूद तकनीकी शिक्षा का नियमन करने वाली संस्था एआईसीटीई इनकी मान्यता बरकरार रखती है। आज इन कॉलेजों में प्रवेश का स्तर इतना गिरा दिया गया है कि जिसके इंटरमीडिएट में केवल पास होने लायक नम्बर हैं, वह भी इंजीनियरिंग में प्रवेश ले सकता है। चाहे छात्र सभी विषयों में फेल होता रहे, उसे किसी क्लास में रोका नहीं जाता और लगातार चारों साल उससे फीस वसूली जाती है। फिर सेंटरों पर नकल और दूसरे बिचौलियों के माध्यम से इन्हें पास भी करवाया जाता है। इसके परिणामस्वरुप, पिछले दो दशकों में इंजीनियरिंग शिक्षा का इतना पतन हुआ जिसकी पहले कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। आज स्थिति इतनी बुरी है कि विभिन्न सर्वेक्षणों के मुताबिक देश के केवल 10 से 15 प्रतिशत इंजीनियरिंग छात्र ही वास्तव में नौकरी पाने लायक हैं। 'इंजीनियरिंग करने के बाद हैसियत बदल जायेगी' यह सपना बेरोजगार इंजीनियरों की बाढ़ में डूब रहा है और प्राइवेट कॉलेजों के सामने प्रवेश का संकट खड़ा हो गया है। तमाम कोशिशों के बावजूद उनकी आधी से ज्यादा सीटें खाली पड़ी हैं। इंजीनियरिंग की शिक्षा संकटग्रस्त हो चुकी है।

इंजीनियरिंग के पाठ्यक्रम में अभी 4 सालों में पढ़ाये जाने वाले लगभग 48 विषयों में से करीब 18 विषय काट दिये जायेंगे। नये पाठ्यक्रम में योग, भारतीय संस्कृति, संस्कृत, संविधान इत्यादि कई अनिवार्य विषय शामिल किये गये हैं जिनका इंजीनियरिंग से कोई वास्ता नहीं है और जिन्हें इंटरमीडिएट तक आराम से पढ़ाया जा सकता है।

वर्चुअल लैब और स्वयं पोर्टल पर चलने वाले ऑनलाइन कोर्स और वीडियो का प्रयोग करने के लिए छात्रों को प्रेरित किया जायेगा। ऑनर्स की डिग्री अब केवल उन्हीं छात्रों को दी जायेगी जो कम से कम 5 कोर्स स्वयं पोर्टल से पढ़ेंगे।

शिक्षक-छात्र अनुपात 1 : 15 बढ़ाकर 1 : 20 कर दिया गया है। (विस्तृत विवरण के लिए एआईसीटीई की वेबसाइट देखें)

इसके साथ ही, शिक्षा मंत्रालय भी सरकारी विश्वविद्यालयों और कॉलेजों की फंडिंग का नया फार्मूला लेकर सामने आया है। जिसके अनुसार-- केवल 70 प्रतिशत फंड ही अनुदान के रूप में मिलेगा और बाकी 30 प्रतिशत लोन के रूप में दिया जायेगा, जिसे कॉलेज/विश्वविद्यालय को फीस या अन्य साधनों से पैसा कमाकर चुकाना होगा। फंडिंग को विभिन्न बातों से जोड़ा जा रहा है-- जिसमें हर साल एडमिशन की संख्या, देश के संस्थानों की रैंकिंग, रिसर्च इत्यादि शामिल हैं। उदाहरण के लिए, केवल उन्हीं कॉलेजों और विश्वविद्यालयों को पूरी वित्तीय सहायता दी जायेगी जिनमें हर साल 20 प्रतिशत की दर से ज्यादा एडमिशन होंगे या जो टॉप 50 संस्थानों में आते हैं। जिन संस्थानों में एडमिशन पिछले वर्ष के बराबर होंगे उन्हें 25 प्रतिशत से भी कम फंड दिया जायेगा। इसी तरह जिन संस्थानों की रैंक 150-200 के बीच होगी, उन्हें भी केवल 25 प्रतिशत फंड दिया जायेगा।

आखिर इन प्रयासों के निहितार्थ क्या हैं। इन सुधारों का लाभ किसको मिलेगा? सरकार और एआईसीटीई के प्रयास भले ही अलग-अलग दिख रहे हों, उनके पीछे के मंसूबे एक ही हैं। एआईसीटीई और सरकार द्वारा थोपे जा रहे इन निर्णयों का जनता पर सीधे प्रभाव पड़ेगा--

(1) शिक्षक और छात्र का अनुपात

घटाने के लिए भारी संख्या में नियमित शिक्षकों की छँटनी की जायेगी।

(2) इंजीनियरिंग विषयों की कटौती से हर ब्राँच में 8-10 शिक्षकों की अब आवश्यकता नहीं रह जायेगी और इस तरह हर इंजीनियरिंग कॉलेज 40-50 छँटनी के शिकार होंगे।

(3) वर्चुअल और स्वयं पोर्टल के ऑनलाइन कोर्स वास्तविक इंजीनियरिंग शिक्षा की जगह टीवी पर ही शिक्षा देंगे। जैसे भूखे को टीवी पर अच्छे-अच्छे भोजन दिखा कर उसको पेट भरने का एहसास करवाया जाये वैसे ही यह इंजीनियरिंग शिक्षा भी आभासी होगी जो धीरे-धीरे औपचारिक शिक्षा को प्रतिस्थापित कर देगी।

(4) फंडिंग में कमी का सीधा परिणाम सरकारी संस्थानों में भारी फीस बढ़ोतरी के रूप में सामने आयेगा। इंजीनियरिंग शिक्षा के रहे-सहे अवसर भी अब साधनविहीन गरीब लोगों से छिन जायेंगे।

जाहिर है, इन सभी उपायों का सीधा फायदा संकटग्रस्त निजी संस्थानों को होगा जो अभी सरकारी कॉलेजों के सामने प्रतियोगिता में नहीं टिक पा रहे हैं-- उनमें फीसें कम हैं, पढ़ाई बेहतर और शिक्षक नियमित हैं। निजी क्षेत्र के कॉलेजों के फायदे के लिए, जिनमें से अधिकांश एमपी/एमएलए, नौकरशाहों और पूँजीपतियों के हैं, इंजीनियरिंग शिक्षा की रीढ़ को ही तोड़ दिया जा रहा है। कहने की जरूरत नहीं कि इसके बाद भी तकनीकी शिक्षा वास्तविक शिक्षा की जगह एक "आभासी शिक्षा" होगी-- सरकार शिक्षा को दिया जा रहा बचा-खुचा अनुदान भी चरणबद्ध तरीके से खत्म कर देगी और केवल कुछ दूरस्थ केन्द्रों पर टीवी के जरिये इंजीनियरिंग की शिक्षा देगी और जिन्हें वास्तव में इंजीनियर बनना है वह पढ़ाई के लिए लुटेरे निजी कॉलेजों की शरण में जाने के लिए बाध्य होंगे।

# एससी-एसटी एक्ट
## क्या ईमानदारी से जाँच सम्भव है?

**--सन्तोष कुमार**

माननीय न्यायधीश श्री आदर्श कुमार गोयल और न्यायधीश श्री उदय उमेश ललित की बेंच ने 20 मार्च को एक याचिका पर सुनवाई करते हुए देशभर में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम 1989, के बड़े पैमाने पर हो रहे गलत इस्तेमाल की बात को स्वीकार करते हुए ऐतिहासिक फैसला सुनाया। जिसके तहत सुप्रीम कोर्ट ने अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम (एससी/एसटी एक्ट 1989) के तहत दर्ज मामलों में तत्काल गिरफ्तारी पर रोक लगा दी है तथा ऐसे मामलों में नये सिरे से दिशा-निर्देश जारी किये गये हैं। और यह नयी व्यवस्था देशभर में लागू हो गयी है।

अगर इस अधिनियम के तहत कोई भी शिकायत दर्ज होती है तो किसी लोक सेवक को उसके नियोक्ता/सक्षम अधिकारी की लिखित अनुमति के बिना गिरफ्तार नहीं किया जा सकता है। वहीं अगर आरोपित व्यक्ति लोक सेवक नहीं है तो उस स्थिति में उसकी गिरफ्तारी के लिए जिले के वरिष्ठ पुलिस अधिकारी की लिखित मंजूरी की जरूरत होगी। शीर्ष अदालत के मुताबिक इन मंजूरियों को आरोपों की पड़ताल के बाद दिया जायेगा, जिसकी जानकारी सम्बन्धित व्यक्ति के साथ अदालत को भी देना जरूरी होगा। अदालत ने यह भी कहा है कि इस अधिनियम के तहत एफआईआर दर्ज करने से पहले कम से कम पुलिस उपाधीक्षक स्तर के अधिकारी द्वारा आरोपों की प्राथमिक जाँच जरूरी है।

सुप्रीम कोर्ट ने माना है कि अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम के तहत आरोपितों को अग्रिम जमानत देने पर पूरी तरह से रोक नहीं है। पहली नजर में कोई मामला नहीं बनने या न्यायिक जाँच के दौरान शिकायत के मनगढ़ंत होने पर अदालत आरोपित को अग्रिम जमानत दे सकती है। सुप्रीम कोर्ट ने इस अधिनियम के बड़े पैमाने पर गलत इस्तेमाल की बात को मानते हुए कहा कि इस मामले में सरकारी कर्मचारी अग्रिम जमानत के लिए आवेदन कर सकते हैं।

शीर्ष अदालत ने नये सिरे से दिशा-निर्देश जारी करते हुए अपनी टिप्पणी में कहा कि वर्तमान समय में खुले मन से सोचने की जरूरत है। अगर किसी मामले में गिरफ्तारी के अगले दिन ही जमानत दी जा सकती है तो उसे अग्रिम जमानत क्यों नहीं दी जा सकती? साथ ही सत्र न्यायलय को निर्देशित किया है कि एससी/एसटी एक्ट के तहत जातिसूचक शब्द इस्तेमाल करने के आरोपी को मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाये तो उस वक्त उस आरोपी की हिरासत बढ़ाने का फैसला लेने से पहले मजिस्ट्रेट को गिरफ्तारी की वजहों की समीक्षा करनी चाहिए। इन दिशा-निर्देशों का उल्लंघन करने वाले अधिकारियों को विभागीय कार्रवाई के साथ अदालत की अवमानना की कार्रवाई का भी सामना करना होगा। ये दिशा-निर्देश जारी करने के पीछे तर्क दिया गया है कि अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम के तहत भयादोहन और बड़ी संख्या में झूठे

केस दर्ज होते हैं जिसके कारण उसमें दोषसिद्धि कम ही हो पाती है। कोर्ट ने कहा है कि राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो के अनुसार 2016 में एससी/एसटी एक्ट के तहत दर्ज 5347 मुकदमे झूठे पाये गये। वहीं वर्ष 2015 में 15638 मामलों की सुनवाई के बाद कोर्ट ने 11024 लोगों को बरी कर दिया और मात्र 4119 मामलों में ही दोषसिद्ध हो पाया।

शीर्ष अदालत ने राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो के उन आँकड़ों पर विचार नहीं किया जो यह बताते हैं कि 2014 में दलितों के खिलाफ 47,064 अपराध हुए। यानी औसतन हर घंटे दलितों के खिलाफ पाँच से ज्यादा अपराध हुए हैं। अपराधों की गम्भीरता को देखें तो इस दौरान हर दिन दो दलितों की हत्या हुई और हर दिन औसतन छह दलित महिलाएँ बलात्कार की शिकार हुई हैं। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो के आँकड़ों के अनुसार 2004 से 2013 तक 6,490 दलितों की हत्याएँ हुईं और 14,253 दलित महिलाओं के साथ बलात्कार हुए हैं।

अगर इतने बड़े बदलाव के पीछे भयदोहन और बड़ी संख्या में झूठे केसों का दर्ज होना है तो क्या आपको नहीं लगता की बलात्कार के केस में भी यह खेल खूब होता है। इस धारा के तहत भी भयदोहन और बड़ी संख्या में झूठे केस दर्ज होते हैं। ऐसे मामलों में भी दोषसिद्धि कम ही होती है जबकि आरोपियों की प्रतिष्ठा धूमिल हो जाती है। तब तो बलात्कार के केस में भी यही दिशा-निर्देश होना चाहिए। क्या बलात्कार के झूठे मुकदमे के पीड़ितों पर वर्तमान समय में खुले मन से सोचने की जरूरत नहीं है? क्या बलात्कार के केस में भी जाँच के बाद ही गिरफ्तारी उचित और न्यायोचित नहीं होगी?

इसके पहले दहेज उत्पीड़न के मामले में भी ऐसा ही होता था तथा समान रूप से 498 ए के मामलों में जाँच के पहले ही गिरफ्तारी हो जाती थी। इस प्रकार 498 ए का बड़ी संख्या में दुरुपयोग हुआ जिसके बाद माननीय सुप्रीम कोर्ट ने अरणेश कुमार बनाम स्टेट ऑफ बिहार के मामले में नया दिशा-निर्देश दिया और जाँच के पहले ही होने वाली गिरफ्तारी पर रोक लगा दी। वहीं सात साल से कम सजा के मामलों में माननीय सुप्रीम कोर्ट ने गिरफ्तारी के पूर्व नोटिस दिये जाने को भी आवश्यक बना दिया है। देशद्रोह और आतंकवाद निरोधक जैसे अनेक कानून ऐसे हैं जिनमें कई वर्षों तक बिना मुकदमा चलाये अभियुक्त को जेल में रखा गया लेकिन अभियुक्त को सजा देने की तो बात ही क्या उन पर केस भी दर्ज नहीं किया गया। क्या उन कानूनों के लिए ऐसे ही दिशा-निर्देश दिये जायेंगे?

अब यहाँ सवाल यह उठता है कि आखिर एससी/एसटी एक्ट बनाया क्यों गया? क्या जरूरत और कैसी परिस्थिति रही थी जब यह बनाया गया और आज क्या परिवर्तन आ गया है जो इस एक्ट में इतने बड़े बदलाव की जरूरत महसूस हो गयी? क्या हमारा गैर-बराबरी वाला समाज आज छुआछूत, ऊँच-नीच, भेद-भाव से रहित होकर जाँच के लिए तैयार हो गया है? अगर हाँ तो फिर अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम की जरूरत ही क्या है? अगर नहीं तो क्या वर्तमान हालात में उचित जाँच हो पायेगी? क्या सरकार में बैठे वर्चस्ववादी लोग जाँच में हस्तक्षेप नहीं करेंगे? अगर ऐसा होता है तो क्या अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम का उद्देश्य पूरा हो पायेगा? अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लोगों को न्याय मिल पायेगा? फिर इस एक्ट का मानवीय मूल्य क्या रह जाता है? जब अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम के मामलों में जाँच के बिना गिरफ्तारी नहीं की जा सकती तो बलात्कार और छेड़छाड़ के मामलों में भी यह दृष्टिकोण क्यों नहीं अपनाया जाना चाहिए? बलात्कार और छेड़छाड़ के आरोपित पक्ष को न्याय क्यों नहीं दिलाया जा सकता है? आखिर यह भेदभाव बलात्कार और छेड़छाड़ के आरोपित व्यक्तियों के साथ क्यों? क्या बलात्कार और छेड़छाड़ के आरोपी के साथ न्याय नहीं होना चाहिए? क्या यह हमारे मानवीय और लोकतांत्रिक समाज का दायित्व नहीं है?

मीडिया में आ रही खबरों और समाज में हो रही घटनाओं से मोटा-मोटी यह साबित होता है कि कानून का दुरूपयोग धड़ल्ले से खूब होता है। वरना भ्रष्टाचार के पहाड़ जैसे आँकड़े हमारे सामने क्यों रहते? ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल के वैश्विक भ्रष्टाचार सूचकांक 2017 में भारत को 81वें स्थान पर रखा गया है। वहीं मानव विकास सूचकांक 2016 में 188 देशों की सूची में भारत 131वें स्थान पर है। क्या इन आँकड़ों से आपको नहीं लगता है कि इन आँकड़ों का असर जाँच एजेंसियों पर भी पड़ता है और अपराधी कानून की पकड़ से बच निकलते हैं।

सुप्रीम कोर्ट के इस फैसले के बाद एससी-एसटी एक्ट का मूल उद्देश्य ही समाप्त हो गया है। सामाजिक-आर्थिक भेदभाव वाले हमारे समाज में दबे-कुचले लोगों के लिए न्यायिक सुरक्षा का समाप्त होना अत्यन्त चिन्ता की बात है। खासकर इस तथ्य की रोशनी में कि इस फैसले के आने के तुरन्त बाद दलित उत्पीड़न की कई लोमहर्षक घटनाएँ सामने आयी हैं।

**विज्ञान को जानने-समझने से पहले लोग स्वाभाविक तौर पर यह विश्वास करते हैं कि ईश्वर ने ब्रह्माण्ड को बनाया है।**

**-- स्टीफन हॉकिंग**

*श्रद्धांजलि*

# स्टीफन हॉकिंग का जाना

**--कविन्द्र कबीर**

14 मार्च 2018 को स्टीफन हॉकिंग दुनिया से विदा हो गये। वे अपने पीछे वैज्ञानिक चिंतन की बड़ी विरासत छोड़ गये। शरीर को अपाहिज बना देने वाली एक गम्भीर बीमारी से पीड़ित स्टीफन हॉकिंग एक मानवतावादी थे। भौतिक विज्ञान से जुड़ी उनकी खोजें अद्भुत हैं, जो एक पल मन को गुदगुदाती हैं तो दूसरे पल मन को अचरज में डाल देती हैं। उन्होंने दिक-काल की व्यापक संरचना का अध्ययन किया। हॉकिंग-पेनरोज प्रमेय के माध्यम से उन्होंने 'सिंगुलारिटी' के बारे में बताया। ब्लैक होल रेडिएशन से सम्बन्धित उनकी संकल्पना ने इस क्षेत्र में पहले से चली आ रही धारणा को गम्भीर चुनौती दी। क्वांटम और गुरुत्वाकर्षण के बिलकुल जुदा माने जाने वाले क्षेत्रों को एक-दूसरे से जोड़कर भौतिक विज्ञान में नये शोध का दरवाजा खोला। वे लगातार पर्यावरण की समस्या के बारे में चिंतन-मनन करते रहे। वे अध्यात्म के मामले में अनीश्वरवादी परम्परा को मानते थे। उन्होने 'समय का संक्षिप्त इतिहास' किताब लिखकर आधुनिक विज्ञान के गूढ़ विषयों को जन-मानस तक पहुँचाया। जीते जी किंवदन्ती बन चुके स्टीफन हॉकिंग ने पोप के अतार्किक विश्वासों का पर्दाफाश किया। उन्होंने जिन्दगी भर सच का साथ दिया और विज्ञान के माध्यम से मानवता की सेवा की।

जब पूरी दुनिया द्वितीय विश्व युद्ध की आग में झुलस रही थी, तब 8 जनवरी 1942 को इंग्लैंड के ऑक्सफोर्ड में फ्रेंक और इसाबेल के घर स्टीफन विलियम हॉकिंग ने जन्म लिया। 11 साल की उम्र तक उन्होंने सेंट एलबेंस स्कूल में पढ़ाई की। फिर वे ऑक्सफोर्ड के यूनिवर्सिटी कॉलेज चले गये। बचपन से ही उनकी रुचि गणित में थी, लेकिन उनके पिता उन्हें डॉक्टर बनाना चाहते थे। संयोगवश उनकी आगे की पढ़ाई भौतिकी में हुई क्योंकि उन दिनों कॉलेज में गणित की पढ़ाई नहीं होती थी और धीरे-धीरे इसी विषय से उन्होंने ब्रह्माण्ड विज्ञान में पढ़ाई की।

स्टीफन हॉकिंग एक मेधावी छात्र थे। तीन सालों में ही उन्हें प्रकृति विज्ञान में प्रथम श्रेणी की ऑनर्स की डिग्री मिल गयी। गणित को प्रिय विषय मानने वाले स्टीफन हॉकिंग में बड़े होकर ब्रह्माण्ड विज्ञान के प्रति एक खास रुचि जगी। यही वजह थी कि जब वे महज 20 वर्ष के थे तब ब्रह्माण्ड विज्ञान विषय में रिसर्च के लिए चुन लिये गये। वहाँ उन्होंने कॉस्मोलॉजी यानी ब्रह्माण्ड विज्ञान में शोध किया। वे आगे चलकर विश्व प्रसिद्ध ब्रितानी भौतिक विज्ञानी, ब्रह्माण्ड विज्ञानी, लेखक और कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में सैद्धांतिक ब्रह्मांड विज्ञान केन्द्र के शोध निदेशक बने। 21 साल की उम्र में उन्हें एम्योट्रोफिक लेटरल स्कलोरेसिस बीमारी की वजह से लकवा मार गया। हॉकिंग को जब यह पता चला कि वे मोटर न्यूरॉन डिजीज से पीड़ित हैं, तब उन्हें दुःख जरूर हुआ, लेकिन उन्होंने हिम्मत नहीं हारी। उनके अंगों ने उनका साथ छोड़ दिया था और धीरे-धीरे उनकी जुबान भी बन्द हो गयी। ऐसी परिस्थिति में उनका चल-फिर पाना और अपनी बात बोलकर किसी से कुछ भी कह पाना बन्द हो गया।

## हॉकिंग का मानवतावादी पहलू

विज्ञान पढ़ने या पढ़ाने और वैज्ञानिक होने में जमीन आसमान का फर्क होता है। हॉकिंग ऐसे वैज्ञानिकों की परम्परा से थे जिन्होंने सचमुच विज्ञान को अपनाया था। दूसरे शब्दों में कहें तो विज्ञान के सही इस्तेमाल के बारे में उनकी राय और समझ पक्की थी। इस बात का सबूत हॉकिंग समय-समय पर बेबाकी से देते रहे। देश-दुनिया के तमाम मुद्दों पर उन्होंने प्रभावशाली तरीके से अपनी राय रखी। 2007 में हॉकिंग ने वैज्ञानिकों, चर्च नेताओं, अभिनेताओं और लेखकों द्वारा परमाणु हथियारों के खिलाफ चलाये जा रहे अभियान में हिस्सा लिया था। हॉकिंग ने परमाणु हथियारों के खतरे से आगाह करते हुए कहा था कि, "परमाणु युद्ध मानव जाति के अस्तित्व के लिए सबसे बड़ा खतरा है।"

सीरिया संकट पर अपनी राय रखते हुए हॉकिंग ने विरोध के रूप में कहा था कि सीरिया में जो कुछ भी हो रहा है, वह अत्यन्त घृणास्पद है। आज हम सीरिया में आधुनिक तकनीक का इस्तेमाल बमों, रसायनों, और अन्य हथियारों के रूप में होते देख रहे हैं। ये हथियार तथाकथित बुद्धिमतापूर्ण राजनीतिक साध्य के रूप में इस्तेमाल किये जा रहे हैं। लेकिन यह कहीं से भी बुद्धिमत्तापूर्ण प्रतीत नहीं होता है क्योंकि 1,00,000 से ज्यादा लोग मार दिये गये और बच्चों को निशाना बनाया जा रहा है। सीरिया की नृशंस घटनाओं को पूरी दुनिया दूर खड़ी चुपचाप देख रही है। हमारी भावनात्मक बौद्धिकता, सामूहिक न्याय की भावना कहाँ है? इस

युद्ध को समाप्त करने के लिए हमें अपनी इनसानी बुद्धिमता का इस्तेमाल करना चाहिये। एक पिता होने के नाते मैं सीरिया के बच्चों की पीड़ा समझ सकता हूँ और कहना चाहूँगा, "बस अब और नहीं!" इस युद्ध को खत्म करने और सीरिया के बच्चों की रक्षा के लिए हमें मिलकर काम करना चाहिए।

2004 में, लन्दन में युद्ध विरोधी एक कार्यक्रम में हॉकिंग ने ईराक में युद्ध अपराध का जिक्र करते हुए कहा था कि ईराक युद्ध की बुनियाद दो झूठी बातों पर आधारित है। पहली ईराक में सामूहिक विनाश के हथियारों का दावा और दूसरा 11 सितम्बर को हुए हमले से इसका सम्बन्ध, जो आज गलत साबित हो चुके हैं। यह युद्ध में मारे गये लोगों के लिये किसी त्रासदी की तरह रहा है। यदि यह युद्ध अपराध नहीं है तो क्या है?

## पर्यावरण को लेकर हॉकिंग की चिन्ता

आज जलवायु परिवर्तन के विनाशकारी प्रभावों के कारण मानवजाति समेत पूरी दुनिया खतरे में है। ग्रीन हाउस गैसों की वजह से पृथ्वी की सतह लगातार गर्म होती जा रही है। दुनिया भर के ग्लेशियर पिघल कर समुद्र स्तर में बढ़ोतरी कर रहे हैं। यदि ऐसे ही चलता रहा तो दुनिया के कई देश एक दिन समुद्र में डूब जायेंगे। पृथ्वी की सतह पर तापमान इतना ज्यादा बढ़ जायेगा कि जीवों की कई प्रजातियाँ ठीक उसी तरह खत्म हो जायेंगी जैसे पृथ्वी से डायनासोर खत्म हो गये। इन्हीं खतरों को ध्यान में रखते हुए हॉकिंग जलवायु परिवर्तन को लेकर पूरी जिन्दगी चिन्तित रहे। उन्होंने बदलते पर्यावरण पर हमेशा चिन्ता व्यक्त की और जलवायु परिवर्तन की वजह से होने वाली तबाही और आगामी त्रासदी के बारे में हमेशा चेतावनियाँ दीं।

हॉकिंग ने कई बार चेताया है कि यदि ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन को नियंत्रित नहीं किया गया तो ये गैसें पृथ्वी को शुक्र ग्रह की तरह ही आग का गोला बना देंगी। एक बार उन्होंने कहा था कि शुक्र ग्रह भी किसी समय पृथ्वी जैसा ग्रह हुआ करता था। जिसकी सतह पर पानी, कम तापमान और उचित वायुमंडल था। नासा के अनुसार भी शुक्र ग्रह चार अरब साल पहले तक बसने योग्य था। लेकिन आज वहाँ का तापमान ढाई सौ डिग्री सेन्टीग्रेड है और हवाएँ तीन सौ मील प्रति घंटे की रफ्तार से चलती हैं। हॉकिंग का मानना है कि शुक्र ग्रह की वर्तमान दुर्दशा की वजह ग्रीन हाउस गैसें हैं जिसने जल और जमीन के साथ-साथ सब कुछ जला कर खाक कर दिया। यदि पृथ्वी पर बदलते जलवायु परिवर्तन पर ध्यान नहीं दिया गया तो वैसा ही कुछ पृथ्वी के साथ भी हो सकता है।

पृथ्वी के वायुमंडल में ग्रीन हाउस गैसों की मात्रा में लगातार बढ़ोतरी होती जा रही है। बेशक, इस बढ़ोतरी के पीछे पृथ्वी के संसाधनों की अन्धाधुन्ध लूट, गैर जरूरी उत्पादों का उत्पादन, वायुमंडल में जहरीला धुआँ उगलती फैक्टरियाँ और मुनाफे पर आधारित यह व्यवस्था ही है। आज पूरी दुनिया में पृथ्वी के संसाधनों की लूट करने वाले लोगों की कमी नहीं है। ऐसे लोग अपनी लूट के बीच आने वाली हर बाधा को नेस्तोनाबूत कर डालते हैं। ऐसे लोगों ने जमीन का सीना चीर डाला, जंगलों को उजाड़ डाला, नदियों को सुखा दिया, पहाड़ों के सीने में डायनामाईट लगा कर उड़ा दिया। ऐसे लोग या इनके पैरोकार अक्सर ही यह तर्क देते हैं कि जलवायु परिवर्तन जैसी कोई घटना हो ही नहीं रही है। कुछ स्वनामधन्य बुद्धिजीवी कहते हैं कि, "जलवायु परिवर्तन नहीं हुआ है, हम लोग ही बदल गये हैं।" ऐसी बयानबाजी करने वाले लोगों के लिये एक कार्यक्रम में बड़े ही मजाकिया अन्दाज में हॉकिंग ने जवाब दिया था। उन्होंने कहा था कि, "अगली बार जब आप किसी जलवायु परिवर्तन को अस्वीकार करने वाले से मिलें, तब उसे शुक्र ग्रह की यात्रा करने का सुझाव दीजिये और हाँ उस यात्रा का खर्च मैं उठाऊँगा।"

## वैज्ञानिक खोजें और योगदान

अपने सहयोगी जॉर्ज एलिस के साथ हॉकिंग ने 'अन्तरिक्ष' की बुनियाद और ब्रह्मांड के अनन्त विस्तार की प्रकृति पर काम किया और आइंस्टीन के सामान्य सापेक्षता के सिद्धान्त का इस्तेमाल करते हुए दिक-काल के संदर्भ में ब्रह्मांड की व्यापक संरचना का वर्णन किया। हॉकिंग ने अपनी किताब "दिक-काल की व्यापक संरचना" में इस अध्ययन को वर्णित किया है। सर रोजर पेनरोज और स्टीफन हॉकिंग ने एक प्रमेय में साबित कर दिया कि आइंस्टीन का सामान्य सापेक्षता का सिद्धान्त कुछ सामान्य भौतिक परिस्थितियों में दिक-काल में किसी निश्चित बिन्दु पर काम नहीं करेगा। इस बिन्दु को 'सिंगुलारिटी' कहा जाता है। किसी ब्लैक होल के पास और ब्रह्माण्ड के निर्माण के समय भी सिंगुलारिटी उपस्थित होता है।

लगभग सभी भौतिकविदों का मानना था कि ब्लैक होल सब कुछ निगल जाने वाले आकाशीय पिंड है। हम इसके बारे में कुछ भी नहीं जान सकते क्योंकि कुछ भी इससे बाहर नहीं आ पाता है। कुछ भौतिकविदों ने मोटा-मोटी अनुमान लगाया कि ब्लैक होल थोड़ा अलग हो सकता है। हॉकिंग ने पहली बार क्वांटम मैकेनिक्स को सामान्य सापेक्षता के क्षेत्र में इस्तेमाल किया और साबित किया कि ब्लैक होल रेडिएशन कर सकते हैं और इसका तापमान भी होता है। हॉकिंग के इस काम ने 'ब्लैक होल थर्मोडायनामिक्स' और 'क्वांटम मैकेनिक्स इन कर्व स्पेस-टाइम' के क्षेत्र में कई शोध गतिविधियों को जन्म दिया।

हॉकिंग ने अपने सहकर्मी जेम्स हर्टल के साथ मिलकर

ब्रह्मांड का क्वांटम मैकेनिकल मॉडल विकसित किया, जिसे 'हॉकिंग-हर्टल स्थिति' कहा जाता है। इस मॉडल के अनुसार ब्रह्मांड पृथ्वी की सतह की तरह है, जिसमें कोई प्रारम्भिक बिन्दु नहीं है। लेकिन इसकी कोई सीमा नहीं है। इसलिए ब्रह्मांड सीमित है, लेकिन सीमा-रहित है। यह पृथ्वी की सतह की तरह ही होता है, जिसका क्षेत्रफल तो सीमित होता है, लेकिन उसका कोई आखिरी छोर नहीं होता। सृष्टि के सृजन से पहले कुछ भी नहीं था और सृजन का क्षण सिर्फ एक सामान्य बिन्दु की तरह है।

'समय का संक्षिप्त इतिहास' हॉकिंग की सबसे चर्चित किताब है। उन्होंने इस किताब के माध्यम से बिग बैंग से लेकर ब्लैक होल तक की यात्रा को आसान भाषा में प्रस्तुत किया। इस किताब के माध्यम से हॉकिंग ने कठिन शब्दों का इस्तेमाल किये बिना ही ब्रह्मांड की उत्पति, संरचना, विकास और अन्तिम नियति को समझाने की कोशिश की, जो खगोल विज्ञान और आधुनिक भौतिकी के अध्ययन का उद्देश्य है। इसी तरह की अपनी दूसरी किताब 'ग्रैंड डिजाईन' में हॉकिंग ने यह जिक्र किया है कि ब्रम्हांड की भव्य बनावट के पीछे कोई निर्माता नहीं है। भौतिक विज्ञान के नियम उन कोरी कल्पनाओं को खारिज करते हैं, जिनमें हमेशा से किसी न किसी निर्माता की भूमिका को तवज्जो दी जाती रही है।

### भारत में हॉकिंग को याद किया जाना

हॉकिंग पूरी जिन्दगी अपने वैज्ञानिक कामों, किताबों, व्याख्यानों और अन्य माध्यमों की सहायता से दुनिया में फैले अज्ञान के खिलाफ ज्ञान को स्थापित करने में लगे रहे। हॉकिंग ने अपने ज्ञान के माध्यम से विज्ञान और वैज्ञानिक नजरिये के साथ लोगों को जीने के लिए प्रेरित किया। इन दोनों के बीच एक सम्बन्ध होता है, लेकिन भारत में इस मामले पर एक अजीब विरोधाभास दिखता है। आज एक तरफ जहाँ विज्ञान और प्रौद्योगिकी की उपलब्धियाँ दिन दूनी रात चौगुनी रफ्तार से बढ़ती जा रही हैं, वहीं दूसरी तरफ हम भारतीयों में अंधविश्वास, कूपमंडूकता, धार्मिक कट्टरता, रूढ़िवाद, अतार्किक परम्पराएँ अपनी जड़ें जमा रही हैं। इम्फाल में भारतीय विज्ञान कांग्रेस के उद्घाटन सत्र को सम्बोधित करते हुए एक मंत्री महोदय ने कहा कि हॉकिंग के अनुसार वेदों में आइन्स्टीन के सापेक्षता सिद्धान्त से ज्यादा बेहतर सूत्र निहित हैं। लेकिन पत्रकारों के यह पूछे जाने पर कि इस बात का स्रोत क्या है? मंत्री महोदय हीला-हवाली करने लग गये। स्पष्ट है कि ऐसे मनगढंत किस्सों से अंधविश्वास को बढ़ावा मिलता है। मंत्री महोदय के बयान पर सरकारी संस्थान के एक वरिष्ठ खगोल भौतिकविद ने कहा कि अतीत को महिमामंडित करने वाले ऐसे बयानों से दुनिया भर में भारत की विश्वसनीयता को नुकसान पहुँचता है। बाद में हॉकिंग फाउण्डेशन ने मंत्री महोदय की बात को बेबुनियाद बताया।

आज जब चारों ओर अन्धविश्वास और कट्टरता का बोलबाला है तब यह जरूरी हो जाता है कि हॉकिंग के वैज्ञानिक विचारों को समझने पर जोर दिया जाये। विज्ञान के इस दौर में वैज्ञानिक नजरिये को आम लोगों की जिन्दगी तक ले जाने की सख्त जरूरत है। इस काम से बढ़कर हॉकिंग को कोई श्रद्धांजलि नहीं हो सकती।

## स्टीफन हॉकिंग के लिए

तुमने हमारे मानसिक क्षितिज का विस्तार किया
तुमने मूलभूत कणों से ब्रह्माण्ड तक में रुचि जगायी
देह की सीमाओं को नकारना सिखाया
हौसलें के पंखों को खोलना और उड़ना सिखाया
एक ऊँगली और पूरे दिमाग के साथ तैरना त्रिभुवन में
जटिल समीकरणों को लतीफे की तरह खोल देना
ब्रह्माण्ड के रहस्यों से इस तरह परदे उठाना
जैसे यह कोई मसखरी हो
भाव को विचार के साथ घुलाकर जिन्दगी के पेंच खोलना
जल में कुम्भ, कुम्भ में जल को घट-घट पहचानना
ज्ञान-विज्ञान को जन से जोड़ना
न जुड़े तो तिलिस्म को तोड़ना
पक्षधरता, प्रतिबद्धता, जिद, बेबाकी
सबसे गजब बात अन्याय के खिलाफ
फिलिस्तीन के साथ खड़ा होना
अमरीका, इजराइल और उनके दुमछल्लों के खिलाफ
ऐसे डटकर लोहा लेना
कि एक ऊँगली और एक अदद भरपूर दिमाग के आगे
उनके सारे अस्त्र-शस्त्र फुस्स

**--दिगम्बर**

---

**अगर मशीनें हमारी जरूरत की हर चीज पैदा कर सकती हैं, तो फिर नतीजा इस बात पर निर्भर करता है कि चीजों का वितरण किस तरह होता है। अगर मशीनों द्वारा उत्पादित सम्पदा बाँट दी जाये तो हर आदमी सुविधा और शानो-शौकत की जिन्दगी बसर कर सकता है। लेकिन मशीनों के मालिक अगर सम्पदा के पुनर्वितरण के विरुद्ध जनमत तैयार कर लें तो अधिकांश लोग नारकीय गरीबी में जीने को बाध्य होंगे। अभी तक तो रुझान दूसरे विकल्प के पक्ष में ही दिख रहा है, तकनोलोजी के साथ ही असमानता निरन्तर बढ़ती जा रही है।**

**-- स्टीफन हॉकिंग**

# तुमको मेरा डाटा चाहिए? ले लो!

**-- जी सम्पत**

**(लेकिन हर दूसरे महीने बार-बार हमें लम्बी कतार में खड़ा होने पर मजबूर मत करो।)**

सचमुच मैं डाटा चोरी और निजता के इस हुड़दंग में नहीं फँसना चाहता और यह भी परवाह नहीं करता कि कैसे फेसबुक, कैम्ब्रिज एनालिटिका, नमो ऐप और आधारवाले मेरे मेहनत से कमाये डाटा को उड़ा ले जा रहे हैं। मैं ऐसे कारसाजों से अच्छी तरह बावस्ता हूँ। वे एयरकंडीशन ओला में बैठकर फेरे लगाते हैं और दावा करते हैं कि वे मौन भारतीय जनता की निजता की हिफाजत कर रहे हैं, जबकि सारी दुनिया जानती है कि मौन भारतीय जनता कुछ किलो चावल से अपनी निजता बदल लेगी।

सोशल मिडिया के ये झगड़ालू कब जागेंगे और गाय के गोबर को सूँघेंगे? अगर वे जगे तो न सिर्फ दीवार पर लिखी इबारत देखेंगे, बल्कि वे यह भी गौर करेंगे कि दीवार 13 फीट ऊँची, पाँच फीट चौड़ी और मोटी चमड़ी मढ़कर मजबूत बनायी गयी है।

## अच्छे लोगों पर विश्वास

सिर्फ इसलिए कि कोई तवज्जो चाहनेवाला बेरोजगार फ्रांसिसी ट्वीटर पर मुलान रुज (डांस) कर रहा है, इसका मतलब यह नहीं कि हम अपनी ही सरकार पर सन्देह करने लगें। और आखिर वह फ्रांसिसी ट्वीटर पर कर क्या रहा है? अगर वह असली फ्रांसिसी होता तो दारू पीने, सुफले तलने, लातिनी इलाके में विवाहेतर सम्बन्ध बनाने में व्यस्त रहता, बजाय एक ऐसे गरीब देश पर धौंस जमाने के जो पलटवार भी नहीं कर सकता।

इसी तरह मार्क जुकरबर्ग ने हमें हजारों बार बताया है कि वह एक शरीफ आदमी है। उसे तो मोदीजी ने गले भी लगाया था। मैं इस बात पर विश्वास नहीं कर सकता कि जिस आदमी को खुद मोदीजी ने गले लगाया हो वह कोई गलत काम करेगा। सीधी बात है, आधार लीक और फेसबुक-सीए लीक दोनों ही फालतू के मुद्दे हैं।

इतनी बातों के बाद अब यह जरूर कहूँगा कि इन डाटानुमा लोगों को लेकर मेरा धैर्य जवाब दे रहा है उनका निजी जीवन इतना कंगाल है कि वे अपना सारा समय लोगों की जासूसी करने के नये तरीके तलाशने पर ही खर्च करते हैं। आप चाहे डाई हों या जुकरबर्ग या रसूख तलाशने वाले शेयर बाजार के अरबपति हों, जिनका भारतीय नेताओं, नौकरशाहों, पत्रकारों और थिंक-टैंकों से याराना हो, हमें आप से एक ही बात कहनी है-- अगर तुमको मेरा डाटा चाहिए, तो बस ले लो!

बायोमेट्रिक से शुरू करके सारा का सारा ले लो। मेरी दसों उँगलियों की छाप ले लो, पैर की उँगलियों की छाप भी ले लो और मेरे बत्तीसों दाँतों की छाप ले लो। आँखों की पुतलियों का निशान भी ले लो। मेरे बालों का नमूना भी ले लो, अगर तुमको कहीं मिल पायें और इसके जरिये डीएनए का पता लगा लो।

लेकिन हर दूसरे महीने बार-बार हमें लम्बी कतार में खड़ा होने पर मजबूर मत करो।

## एक सुविधासम्पन्न अभिजात का जूनून

निजता के सवाल पर मैंने पहले ही कहा कि मैं भारत सरकार के साथ सहमत हूँ। निजता भारतीय संस्कृति का अंग नहीं है। अगर भारतीय लोग निजता में विश्वास करते होते तो क्या हमें स्वच्छ भारत अभियान की जरूरत पड़ती? निजता एक सुविधासम्पन्न अभिजात का जूनून है जो पतित पाश्चात्य संस्कृति के बहकावे में आ गये हैं। जैसा कि मेरे एक माननीय मंत्री ने कहा, "हमको अमरीकी वीजा लेने के लिए एक गोरे के आगे नंगा होने में कोई समस्या नहीं होती। जब सरकार आपका नाम और पता पूछती है तो भारी क्रान्ति आ जाती है और कहते हैं कि यह हमारी निजता में दखलन्दाजी है।"

जहाँ तक मेरी बात है, मैं कभी गोरों के आगे या किसी के भी आगे नंगा नहीं होऊँगा, चाहे वीजा का मामला हो या कोई और कारण। लेकिन मैं इससे बड़ी बात मान लेता हूँ कि जब सरकार आप से कुछ माँगे तो सिद्धान्त रूप में उसे मना नहीं करना चाहिए। अगर अपना बच्चा बेचने का मामला हो या पार्किंग की जगह छोड़ने का, तो मैं समझ सकता हूँ कि कोई झमेला कर रहा है। लेकिन कोई बेहद स्वार्थी व्यक्ति ही सरकार के कहने पर अपनी निजता का त्याग करने से मना कर सकता है-- जो संयोग से उसे फोकट में मिली है।

बहरहाल, हमें यह नहीं भूलना चाहिए की डाई और जुकरबर्ग हमसे पैसा थोड़े न माँग रहे हैं-- सिर्फ डाटा ही तो माँग रहे हैं, जो अगर आप ठंडे मन से सोचें तो डिजिटल विष्ठा के बराबर है। यह वही विष्ठा है जो ऑनलाइन बैठे-बैठे आप हर पल त्यागते रहते है।

(द हिन्दू से साभार)

**अनुवादक-- दिगम्बर**

# नेपाल की दो-तिहाई बहुमत वाली नयी सरकार का भारत से सम्बन्ध?

**--आनन्दस्वरूप वर्मा**

प्रधानमंत्री के पी ओली की इस बार की भारत यात्रा इस अर्थ में काफी भिन्न है क्योंकि पहली बार नेपाल का कोई प्रधानमंत्री ऐसी हैसियत में है जब वह लगभग दो तिहाई बहुमत के साथ एक स्थिर सरकार देने की स्थिति में हो। इस यात्रा को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण इसलिए भी कहा जा सकता है क्योंकि पहली बार नेपाल के किसी विदेश मंत्री ने खुलकर यह राय व्यक्त की है कि अब समय आ गया है जब भारत और नेपाल के सम्बन्धों को फिर से परिभाषित किया जाये और नया रूप दिया जाये। प्रधानमंत्री ओली की यात्रा से महज चार दिन पहले, दो अप्रैल को विदेश मंत्री प्रदीप ज्ञवाली ने पत्रकारों से बातचीत करते हुए कहा कि अब तक जो कहानी दुहराई जाती रही है कि नेपाल हमेशा एक लेनदार देश है और भारत देनदार, उसे बदलने की जरूरत है। इसे थोड़ा और विस्तार देते हुए उन्होंने कहा कि भारत में तकरीबन सात-आठ लाख नेपाली काम करते हैं लेकिन नेपाल के अन्दर भी भारी संख्या में भारतीय हैं जो यहाँ से पैसे कमा कर भारत भेजते हैं। भारतीय सेना में हजारों की संख्या में नेपाली युवक काम करते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि भारत के हिस्से में हमारा भी उल्लेखनीय योगदान है। अगर दोनों देशों के बीच सम्बन्धों को सद्भावपूर्ण बनाना है तो इस तथ्य को भी रेखांकित करना होगा।

अपने वक्तव्य में उन्होंने नाकाबन्दी के दिनों में भारत के साथ तनावपूर्ण सम्बन्धों को याद करते हुए कहा कि "उस समय हमने जो रुख अख्तियार किया उस पर हमें गर्व है।" जाहिर सी बात है कि उनका आशय भारत के सामने न झुकने से था। चीन की ओर खुल कर मुखातिब होने का भी वही दौर था। इसी संदर्भ में उन्होंने अपने दोनों पड़ोसियों के सम्बन्धों की चर्चा की और कहा कि "हम उनके किसी रणनीतिक अथवा भौगोलिक-राजनीतिक स्वार्थों से खुद को नहीं जोड़ेंगे।" इन दोनों देशों के साथ सम्बन्ध बनाते समय नेपाल हमेशा अपने आर्थिक विकास और निवेश को ही एजेंडा बनायेगा। विदेश मंत्री ने इस बात पर भी जोर दिया कि भारत और नेपाल के द्विपक्षीय सम्बन्धों को नया रूप देने की जरूरत है।

पिछले दस वर्षों के दौरान नेपाल में दस प्रधानमंत्री आये और चले गये। यह यात्रा इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है कि नेपाल के नये संविधान के निर्माण के बाद दोनों देशों के सम्बन्धों में काफी कटुता आ गयी थी और नेपाल को एक ऐसी आर्थिक नाकाबन्दी का सामना करना पड़ा जिसने व्यापक जनसमुदाय के अन्दर भारत के प्रति काफी हद तक चिढ़ पैदा कर दी। उस समय नेपाली राष्ट्रवाद की जो लहर पैदा हुई, उसका असर था कि कई दशकों से भारत के करीबी समझे जाने वाले ओली की छवि एक भारत विरोधी नेता के रूप में उभरी और भारतीय शासकों के शब्दकोश में भारत विरोधी होने का अर्थ है चीन समर्थक होना। सितम्बर 2015 में नेपाल का संविधान बना था और संविधान बनने के दूसरे ही दिन से आर्थिक नाकाबन्दी शुरू हो गयी थी। उस वर्ष अक्तूबर में के पी ओली प्रधानमंत्री बने और फरवरी 2016 तक उनको इस नाकाबन्दी से जूझना पड़ा। ओली की सरकार माओवादियों के समर्थन से बनी थी और जैसे ही माओवादी नेता प्रचंड ने जुलाई 2016 में समर्थन वापस लेने की घोषणा की, उनकी सरकार गिर गयी। प्रचंड प्रधानमंत्री बन तो गये लेकिन उनके इस कदम को नेपाली जनता ने पसंद नहीं किया और सबने यह आशंका व्यक्त की कि प्रचंड ने भारत के इशारे पर ओली की सरकार गिरायी-- वह भी ऐसे समय जब वह भारत की दादागिरी का मुकाबला कर रहे थे।

इस घटना के बाद नेपाल में बहुत कुछ हुआ। माओवादी नेता प्रचंड और नेपाली कांग्रेस के नेता शेरबहादुर देउबा ने बारी-बारी प्रधानमंत्री पद सम्भाला और सत्ता संचालन किया। नये संविधान के तहत नवगठित राज्यों के चुनाव सफलतापूर्वक हुए। फिर एक अप्रत्याशित घटना हुई-- के पी ओली की पार्टी नेकपा (एमाले) और प्रचंड की पार्टी नेकपा (माओवादी केन्द्र) ने मिल-जुल कर चुनाव में हिस्सा लिया। दोनों पार्टियों की एकता ने एक अभूतपूर्व दृश्य उपस्थित किया। भारत के सत्ताधारी वर्ग की परम्परागत रूप से पसंदीदा पार्टी नेपाली कांग्रेस हाशिये पर चली गयी और इन दोनों वामपंथी पार्टियों की एकता ने कम्युनिस्टों को नवगठित संसद में दो तिहाई के करीब पहुँचा दिया। जैसा कि पहले से तय था, 15 फरवरी 2018 को के पी ओली एक बार फिर प्रधानमंत्री पद पर आसीन हुए।

ऊपर जिन घटनाओं का उल्लेख किया गया है उनसे मोदी सरकार का चिंतित होना स्वाभाविक था। नेपाल को फिर से हिन्दू राष्ट्र के रूप में देखने का सपना पाल रहे तत्वों के लिए यह व्यापक वाम एकता किसी हादसे से कम नहीं था। इन्होंने बहुत कोशिश की कि यह सम्भव न हो सके। इन सबके बावजूद दोनों ने मिलकर चुनाव लड़ा और शानदार कामयाबी पायी। जिन दिनों नाकाबन्दी चल रही थी, के पी ओली ने चीन के साथ कुछ समझौते किये थे, ताकि

जरूरी सामानों की आपूर्ति में भारत की ओर से जो रुकावट पैदा की गयी है उसका समाधान ढूँढा जाये। नाकाबन्दी ने सचमुच ओली को भारत के विरुद्ध खड़ा कर दिया। ऐसी स्थिति में ओली का फिर प्रधानमंत्री पद पर चुना जाना भारत सरकार के लिए बहुत सुखद नहीं था। तो भी प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने चुनाव के नतीजे आने के तुरन्त बाद ओली को बधाई देने के लिए एक बार नहीं बल्कि दो बार फोन किया और उन्हें भारत आने का निमंत्रण दिया। प्रधानमंत्री पद की शपथ लेने से 15 दिन पहले ही विदेश मंत्री सुषमा स्वराज काठमांडो गयीं और उन्होंने ओली को अग्रिम बधाई दे दी।

नेपाल में एक अजीब सी परम्परा है (जिसका भारत काफी प्रचार करता है) कि जब भी कोई प्रधानमंत्री पद की शपथ लेता है तो उसकी पहली विदेश यात्रा भारत की होती है। 2008 में प्रधानमंत्री बनने के बाद प्रचंड ने जब इस परम्परा को तोड़कर चीन को अपना पहला गंतव्य बनाया तो भारत की भौंहें तन गयीं। नेपाल का प्रबुद्ध समुदाय इस परम्परा के खिलाफ है और इसे वह नेपाली नेताओं की हीन भावना के रूप में देखता है। वैसे तो के पी ओली की भी पहली विदेश यात्रा भारत की ही हो रही है लेकिन इससे भारत को खुशी नहीं है। इसकी वजह यह है कि पिछले कई दशकों में पहली बार ऐसा हुआ है कि पाकिस्तान के प्रधानमंत्री राजकीय यात्रा पर नेपाल पहुँचे हों। 15 फरवरी को ओली प्रधानमंत्री बने और 5 मार्च को उन्होंने पाकिस्तान के प्रधानमंत्री शाहिद खान अब्बासी का काठमांडो में स्वागत किया। भारत के शासन तंत्र ने इसे एक खतरनाक संकेत के रूप में लिया क्योंकि चीन द्वारा प्रस्तावित 'बेल्ट ऐंड रोड इनीशिएटिव' (बीआरआइ) में भाग लेने से भारत अभी तक इनकार कर रहा है जबकि नेपाल और पाकिस्तान दोनों इसमें शुरू से ही शामिल हैं।

दरअसल डोकलाम की घटना ने नेपाल के मनोविज्ञान को काफी प्रभावित किया है। भूटान और चीन के बीच विवादित क्षेत्र में जिस तरह भारत ने आक्रामक अन्दाज में हस्तक्षेप किया, उससे नेपाल काफी सतर्क हो गया। यही वजह है कि प्रधानमंत्री की इस यात्रा से पहले नेपाली मीडिया में बहुत सारे ऐसे लेख प्रकाशित हुए जिनमें प्रधानमंत्री को सलाह दी गयी कि भारत के साथ बातचीत में वह उन मुद्दों को भी उठाएँ जो दोनों देशों के सीमा विवाद से सम्बन्धित हैं। इस संदर्भ में काला पानी और सुस्ता का विशेष रूप से उल्लेख किया गया। नेपाल के प्रमुख अखबार 'काठमांडो पोस्ट' ने निरंजन मणि दीक्षित का एक लेख प्रकाशित किया जिसमें कहा गया था कि ''भारत ने काला पानी इलाके में तकरीबन 37000 हेक्टेयर, सुस्ता में 14000 हेक्टेयर और नेपाल-भारत सीमा पर 71 जगहों में 12000 हेक्टेयर पर कब्जा कर रखा है। डोकलाम के त्रिदेशीय सीमा क्षेत्र से जब फौजें हटाने की बात भारत करता है तो उसे खुद भी नेपाल के काला पानी क्षेत्र से अपने सैनिक हटा लेने चाहिए।''

1962 में चीन के साथ हुए युद्ध के दौरान भारतीय सैनिकों ने काला पानी में अपना अड्डा स्थापित किया था। यह स्थान सामरिक दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यहाँ से चीनी सैनिकों की गतिविधियों पर निगाह रखी जा सकती है। शुरू के दिनों में इंडो-तिब्बतन बार्डर पुलिस के लोगों ने वहाँ कुछ छावनियाँ बनायी थीं लेकिन धीरे-धीरे भारतीय सेना ने पक्की इमारतें और बंकर भी बनाने शुरू कर दिये। फिर वहाँ सेना की कुछ बटालियनें तैनात कर दी गयीं। पिछले 21 वर्षों से काला पानी के मामले पर दोनों देशों के बीच अनेक बैठकें हुईं लेकिन अब तक कोई समाधान नहीं निकला। समस्या के समाधान के लिए 'नेपाल-इंडिया ज्वाइंट टेक्निकल लेवल बाउंड्री कमेटी' 1981 में बनायी गयी लेकिन 2007 में इसका विघटन कर दिया गया। काला पानी के विवाद को जब भी हल करने की कोशिश की गयी, भारत ने कुछ ऐसे नक्शे पेश किये जिसे नेपाल फर्जी मानता है।

यही हालत नवलपरासी जिले के सुस्ता क्षेत्रा की है जहाँ तकरीबन 14000 हेक्टेयर की जमीन को लेकर विवाद है। ओली की भारत यात्रा से पहले नेपाल के कई विशेषज्ञों ने खुल कर कहा है कि काला पानी-लिपुलेह का इलाका ऐसा है जहाँ भारत-नेपाल और चीन की सीमा मिलती है और अगर इसका अब समाधान नहीं किया गया तो आने वाले दिनों में यह गम्भीर रूप ले सकता है।

ओली के प्रधानमंत्री बनने के साथ ही नेपाल की राजनीति ने एक नये युग में प्रवेश कर लिया है। पिछले कुछ वर्षों के दौरान चीन का नेपाल में जबर्दस्त निवेश हुआ है और बहुत सारी परियोजनाओं में उसने पूँजी लगायी है। 'बेल्ट ऐंड रोड इनीशिएटिव' के जरिये उसने नेपाल के इंफ्रास्ट्रक्चर के विकास की भी अच्छी खासी योजना तैयार की है। शायद चीन के ही आश्वासन के आधार पर के पी ओली ने अगले पाँच साल का जो कार्यक्रम तैयार किया है उसके अनुसार ईस्ट-वेस्ट हाइवे के समानान्तर रेल लाइन बिछाई जायेगी, रसुआगढ़ी से लेकर लुम्बिनी तक रेल व्यवस्था तैयार की जायेगी, काठमांडो के चारों तरफ जो रिंग रोड है उसे मेट्रो रेल व्यवस्था से सम्पन्न किया जायेगा और परिवहन के क्षेत्र में नेपाल में एक क्रान्ति ला दी जायेगी। हाइड्रो इलेक्ट्रिक के क्षेत्र में भी अनेक परियोजनाओं पर काम चल रहा है और ये परियोजनाएँ किनके हिस्से में जायेंगी इसे लेकर भारत और चीन के बीच काफी खींचतान भी है।

नेपाल के लोगों ने अब यह कहना शुरू कर दिया है कि 'रोटी-बेटी का सम्बन्ध' या 'सांस्कृतिक एकता' जैसी भावुकतापूर्ण बातों से अब फुसलाया नहीं जा सकता। अगर सम्बन्धों का इतना ही ध्यान था तो छह महीने की आर्थिक नाकाबन्दी क्यों की गयी? भारत के सामने आज सबसे बड़ी चुनौती यह है कि अपने परम्परागत मित्र नेपाल को वह कैसे अपने प्रभाव क्षेत्र में बनाये रखे। पहली बार कोई सरकार अपनी सम्प्रभुता को जोरदार ढंग से व्यक्त कर रही है और ऐसे में देखना है कि भारत का सत्ताधारी वर्ग उसकी इस भावना का सम्मान कर पाता है या नहीं?

# कहीं भाजपा अपनी चुनावी जमीन तो नहीं खो रही है

जुलाई 2017 में, इससे पहले कि नोटबन्दी की घातक मार से जनता उबर पाती, उस पर सरकार ने एक नया हमला बोल दिया। एक बार फिर लोगों की जेबों को खाली कराने की पटकथा लिखी गयी। यह मामला था-- नया वस्तु और सेवा कर (जीएसटी)। इसके चलते वस्तु उपभोग में भारी कमी आयी है। क्योंकि लोगों की जेबों में अभी भी पर्याप्त नकद रुपया नहीं था। उद्योग-धन्धे अभी सम्भल भी नहीं पाये थे कि जीएसटी लागू कर दिया गया। हालाँकि अर्थव्यवस्था की सेहत ठीक होती तो भी जीएसटी जनता के हित में नहीं था।

सरकार ने अपने पुराने एजेन्डे 'हिन्दुत्व' को लगातार आगे बढ़ाया है। यहाँ वह असफल होती हुई नजर नहीं आ रही है। इतिहास की किताबों में फेर-बदल की गयी। नये सिरे से मिथकों को गढ़ा गया और उसकी विष बेल लोगों के दिमाग में आरोपित की गयी। असली समस्याओं से उनका ध्यान हटाकर लव जेहाद, गाय, मुस्लिम विरोध और छद्म राष्ट्रवाद के मुद्दों की ओर से मोड़ा गया। 2014 के लोकसभा चुनाव में मोदी विकास का जो शिगूफा लेकर आये थे और जिसने बीजेपी को सत्ता में पहुँचा दिया, अब उस शिगूफे की हवा निकल रही है। सरकार की जिस छवि को मीडिया ने पेंट-पोलिश करके बड़ी मेहनत से चमकाया था, उसकी चमक आर्थिक विफलताओं के चलते उतर रही है।

ऐसे हवाई दावे किये जा रहे हैं कि अगले 10 वर्षों बाद भारत की अर्थव्यवस्था दुनिया की तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था होगी। जबकि सच्चाई यह है कि देश की आधे से अधिक आबादी बेहद गरीबी और भुखमरी में जीने को मजबूर है। अक्टूबर 2017 में जारी वैश्विक भूख सूचकांक में भारत की रैंक गिरते-गिरते 100 वें स्थान पर पहुँच गयी। पड़ोसी देश बांग्लादेश भी इस रैंक में हमसे बेहतर है और हमारी सरकार आधी से अधिक आबादी को रोटी भी मुहैया नहीं करा पा रही है।

हालात इतने बिगड़ गये कि मोदी का सबसे मजबूत गढ़ माने जाने वाले गुजरात में भी जनता सरकार से काफी नाराज हो गयी, जिसका असर विधान सभा चुनाव में भी देखने को मिला। दिसम्बर 2017 के गुजरात चुनाव में मोदी की अपने ही घर में कठिन परीक्षा हुई। 20 सालों से गढ़ रहे गुजरात में इस बार उन्हें काफी जोर आजमाइश करनी पड़ी। भाजपा ने यहाँ बहुमत तो बनाये रखा लेकिन 16 सीटें हार गयी। इससे यह तो स्पष्ट है कि अभी तक शीर्ष पर रही भाजपा का यह रुतबा छिनने की शुरुआत हो गयी है।

गुजरात में ही पिछले कई सालों से व्यापारी वर्ग मोदी की नीतियों का समर्थन करता आया था। लेकिन अबकी बार सूरत बदल गयी। लोगों का भरोसा सरकार में कमजोर हुआ है। नोटबन्दी के बाद सूरत के कपड़ा उद्योग के मालिक मजदूरों का भुगतान नहीं कर पाये। कारोबार करने वाले लोगों के पास पर्याप्त नकदी नहीं बची, जिससे मजदूरी का भुगतान करने में कठिनाई पैदा हुई। इसके चलते कपड़ा कारोबार छोड़कर बहुत से मजदूर चले गये। इसी तरह देश के सैकड़ों अन्य कारखानों में नकदी की कमी के चलते चन्द महीनों में लाखों की सख्या में मजदूर बेरोजगार हो गये। कई कम्पनियाँ उजड़ गयीं।

मोदी से नाराज गुजराती कारोबारियों का असर भी गुजरात चुनाव में देखने को मिला। प्रधानमंत्री मोदी की नीतियों ने मुख्य रूप से छोटे और मध्यम वर्ग के व्यापारियों को असन्तुष्ट किया है। जिस व्यापारी वर्ग ने मोदी को 2014 चुनाव में हाथो-हाथ लिया था। अब यही व्यापारी वर्ग मोदी की नीतियों के खिलाफ धरना प्रदर्शन करता नजर आ रहा है।

मोदी गुजरात मॉडल के दम पर ही केन्द्र में सरकार बनाने में कामयाब हो सके थे। देश में गुजरात मॉडल को बढ़ा-चढ़ाकर बताया गया था। लोगों के मस्तिष्क में विकसित राष्ट्र की छवि बिठायी गयी थी। जिसके नायक मोदी थे। मोदी की हालिया नीतियों ने गुजरात के कई छोटे-बड़े व्यापार को नुकसान पहुँचाया। आर्थिक नुकसान के बावजूद अधिकांश लोगों ने मोदी की पार्टी को ही चुना है। इसका कारण आर्थिक नहीं है। इसका कारण है मोदी का पहला आधार "हिन्दुत्व"।

आर्थिक नीतियों की विफलता के चलते मोदी की पार्टी के कई पक्के वोट कांग्रेस की झोली में खिसक गये। इसका साफ मतलब है कि हिन्दुत्व के नाम पर मोदी लोगों से ज्यादा दिन तक वोट बटोरने में कामयाब नहीं हो पायेंगे। चार सालों में ठोस जमीनी काम को अंजाम न दे पाने के चलते और देश का माहौल न सम्भाल पाने की वजह से मोदी की नकारात्मक छवि बनने लगी है। इसकी चर्चा लोगों से किसी भी गली-नुक्कड़ पर आमतौर पर सुनने को मिल जाती है। उत्साही मतदाता अब मोदी के कार्यों से असन्तुष्ट हैं।

राजस्थान उप चुनाव में भी मोदी की पार्टी का जादू नहीं चल पाया। राजस्थान उप चुनाव में बीजेपी अपने ही गढ़ में तीनों सीटों पर बुरी तरह हार गयी। यही हाल यूपी उप चुनाव में भी था, जहाँ मुख्यमंत्री और उप-मुख्यमंत्री द्वारा खाली संसदीय सीट पर भाजपा को बुरी तरह हार का सामना करना पड़ा। बीजेपी का दूसरा एजेण्डा "हिन्दुत्व" की कड़ियाँ भी कमजोर पड़ने लगी हैं। अब ये बातें इशारा कर रही हैं कि जनता का ज्यादा दिनों तक धर्म के नाम पर ध्रुवीकरण नहीं किया जा सकता। लोगों के पास फाँकने को अनाज नहीं है तो आखिर लोग कब तक "हिन्दुत्व" का टुकड़ा फाँक-फाँककर पेट भर सकते हैं?

# जलवायु परिवर्तन पर सीओपी की 23 वीं बैठक

पिछले साल, 18 नवम्बर को पार्टियों की कान्फ्रेन्स (सीओपी-23) की 23 वीं बैठक बोन में हुई। सीओपी-23 जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र फ्रेमवर्क कन्वेंशन की 23 वीं कान्फ्रेन्स थी। विज्ञान और पर्यावरण केन्द्र (सीएसई) ने बताया कि अमरीका के अड़ियल और गैरजिम्मेदाराना रवैये के चलते सीओपी प्रक्रिया आगे बढ़ पाना मुश्किल हो गया है। कई अवसरों पर अमरीका ने इसमें बाधा पहुँचायी है तथा विकसित और विकासशील देशों के बीच पुराने विभाजन बने हुए हैं। सीओपी की बैठक से पहले अमरीका ने संकेत दिया था कि वह अपने हितों को सुरक्षित रखने के लिए ही वार्ता प्रक्रिया में संलग्न होगा और उसने पेरिस समझौते से फिर से जुड़ने की शर्त रखी कि इस पर फिर से बात की जाये। हालाँकि पेरिस समझौते के प्रावधानों के अनुसार, अमरीका केवल 2020 के अन्त के बाद ही इससे हट सकता है।

सीएसई के उप महानिदेशक चन्द्र भूषण ने अपने एक बयान में कहा कि "बोन में एक साथ काम करने और अमरीका के अड़ियल रवैये के खिलाफ एकजुट होने के बजाय, विकसित और विकासशील देशों के बीच पुराने झगड़े जारी रहे।" इसका अर्थ साफ था कि अमरीका ने अपने व्यापारिक हितों को आगे रखकर वार्ता में फिर से रुकावट डाल दी। अमरीकी घोषणा केवल एक राजनीतिक निर्णय है, जिसका पेरिस समझौते पर कोई कानूनी असर नहीं होगा। पेरिस समझौते में भी अमरीका को शामिल करने का कोई कानूनी विकल्प नहीं है। सच पूछा जाये तो अमरीका ने अपने जलवायु-विरोधी एजेंडे को दुनिया के सामने घोषित कर दिया है। वह न केवल इंसानियत का बल्कि पूरी धरती के सभी जीव-जंतुओं का दुश्मन बन गया है, क्योंकि खतरनाक जलवायु परिवर्तन से इन सभी का भविष्य खतरे में पड़ता जा रहा है।

इस कान्फ्रेन्स में निर्णय लिया गया कि कृषि में जलवायु परिवर्तन के मसलों को कैसे सम्बोधित करें। सभी पार्टियों को अब कृषि में जलवायु परिवर्तन के मसलों पर निम्नलिखित रिपोर्ट प्रस्तुत करना आवश्यक है; मिट्टी का स्वास्थ्य, मिट्टी के कार्बन और मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार के लिए अनुकूलन मूल्यांकन विधियाँ, साथ ही पोषक तत्वों के उपयोग और खाद प्रबंधन में सुधार के लिए विचार और सामाजिक, आर्थिक और खाद्य सुरक्षा आयामों पर रिपोर्ट, आदि। इसी तरह की अन्य छोटी-मोटी वैज्ञानिक, सामाजिक गतिविधियों की योजना के अलावा सीओपी-23 की कोई खास उपलब्धी नहीं थी, जिसका यहाँ जिक्र किया जाये।

# दलितों के उत्पीड़न की बढ़ती घटनाएँ

इलाहाबाद के कर्नलगंज स्थित रेस्टोरेंट में 9 फरवरी की रात एलएलबी द्वितीय वर्ष का छात्र दिलीप सरोज अपने दोस्तों के साथ खाना खाने पहुँचा, तभी फोर्च्युनर कार सवार तीन लड़के भी वहाँ पहुँच गये। इस बीच युवकों में जाति को लेकर विवाद हो गया। कार सवार युवकों ने अपने कुछ दोस्तों को बुला लिया। फिर उन्होंने रेस्टोरेंट के अन्दर ही दिलीप पर कुर्सियाँ उठाकर हमला कर दिया। दिलीप के दोस्तों ने बीच बचाव की कोशिश की लेकिन कार सवार युवकों की संख्या ज्यादा होने के चलते वे अपनी जान बचा कर भाग निकले। युवकों ने दिलीप को अकेला पाकर अधमरा होने तक पीटा, फिर उसे खींचकर रेस्टोरेंट के बाहर ले आये और ईट, लोहे की रॉड से उसे पीटा। अधमरा होने पर वे दिलीप को छोड़कर मौके से भाग निकले। वहीं मौके पर उपस्थित लोगों ने उसे एसआरएन हॉस्पिटल पहुँचाया, जहाँ उसकी इलाज के दौरान मौत हो गयी। इस घटना पर देश के एक खास समूह ने खुशी मनायी क्योंकि उन्हें दलित छात्र द्वारा कानून की पढ़ाई करना तथा रेस्टोरेंट में खाना खाया जाना रास नहीं आया।

यह दलित के उत्पीड़न की एकमात्र घटना नहीं है। इससे पहले कासगंज के निजामपुर गाँव में जाटव परिवार के संजय की शादी 20 अप्रैल 2018 को होनी थी। संजय एलएलबी की पढ़ाई कर रहा था। वह अपनी बारात धूमधाम से ससुराल में लाना चाह रहा था, लेकिन जब उसने अपने ससुराल वालों से इस सम्बन्ध में बात की तो पता चला कि इस ठाकुर बाहुल्य गाँव में दलित बिरादरी को बारात चढ़ाने की अनुमति नहीं है। निजामपुर गाँव में ठाकुरों की संख्या 250 से 300 के आसपास है जबकि जाटव सिर्फ 40 से 50 लोग हैं। संजय को जब यह बात पता चली तो उसने जिलाधिकारी कासगंज और मुख्यमंत्री के जनसुनवाई पोर्टल पर अपनी शिकायत दर्ज करायी। लेकिन पुलिस ने सुरक्षा देने की बजाय बारात को शान्ति के लिए खतरा बता दिया।

ये घटनाएँ तब हैं जब आजादी के बाद संविधान में दलितों को बराबरी का दर्जा दिया गया है लेकिन न तो आजादी से पहले और न ही बाद में ऐसी घटनाओं में कमी आयी है। आये दिन दलित उत्पीड़न और अत्याचार की कोई न कोई घटना सुनने को मिलती है। ऐसे में सवाल उठता है कि क्या ऐसे अपराधों को सहते रहना ही इसका विकल्प है?

दलितों पर हो रहे अत्याचारों के ठोस कारणों को जाने बिना इन अपराधों को रोका नहीं जा सकता है। यदि दलितों के खिलाफ होने वाले अपराधों में समाज का एक खास समूह ही शामिल होता तो इतना खतरनाक न होता, मगर दलितों के खिलाफ होने वाले अपराधों में नेताओं से लेकर साधु-संन्यासियों तक पूँजीपतियों से लेकर अधिकारियों तथा खुद दलितों के बीच से कुछ ऊपर उठ गये लोग तक शामिल हैं। आज दलित स्वयं को अपने ही देश में अपने घर के अन्दर भी सुरक्षित महसूस नहीं कर पा रहे हैं।

निश्चय ही आजादी के बाद अछूत कही जाने वाली जाति यानी दलितों की स्थिति में कुछ सुधार हुए हैं। उनके बीच से कुछ लोग मध्यम वर्ग तथा शासक वर्ग में भी शामिल हुए हैं। उनमें कुछ चेतना भी आयी है। अब वे पहले की तरह सब कुछ सहने को तैयार नहीं हैं लेकिन अपने हक के लिए खड़े होने और अन्याय का विरोध करने पर बर्बर अत्याचार और सामूहिक नरसंहार तक की घटनाएँ भी तेजी से बढ़ रही हैं। साथ ही दलितों के बीच से ऊपर उठे लोगों में भी उनके प्रति कोई सहानुभूति या सहयोग का रवैया दिखायी नहीं देता। अवसरवादी दलित नेता किसी भी मामले में सवर्णों से कम नहीं। रामविलास पासवान, उदित राज, रामदास अठावले जैसे लोगों का ब्राह्मणवादी पार्टी (भाजपा) में शामिल होना इसका एक अच्छा उदाहरण है। उत्तर प्रदेश में दलितों का मसीहा होने का दावा करने वाली बहुजन समाज पार्टी के लिए भी दलित महज वोट बैंक ही हैं। उनकी शिक्षा, चेतना तथा राजनीतिक सक्रियता बढ़ाने में इसकी भी कोई खास दिलचस्पी नहीं। तिलक, तराजू और तलवार को खारिज करने का नारा लेकर चली यह पार्टी अब ब्रह्मा, विष्णु और महेश तक की यात्रा कर चुकी है।

दलितों को मिलने वाले आरक्षण के सवाल पर भी इनकी समझ अन्य चुनावबाज पार्टियों से अलग नहीं है। फर्क सिर्फ इतना है कि भाजपा जैसी पार्टियाँ अगर आरक्षण के खिलाफ बोलें तो इन्हें पक्ष में बोलना है। लेकिन सरकारें नीतियाँ बनाकर जिस तरह आरक्षित स्थानों को ही खत्म कर रही है ऐसे सवालों पर अन्य पार्टियों के साथ खुद को दलितों का संगठन कहने वाली पार्टियों में भी गजब की एकता है। हाल ही में सरकार ने 62 विश्वविद्यालयों को स्वायत्त घोषित कर दिया। इन विश्वविद्यालयों की सबसे बड़ी स्वायत्तता अपने लिए खुद संसाधन जुटाना है। जिसका सीधा सा अर्थ है विश्वविद्यालयों की फीस बढ़ जाना और परिणाम स्वरूप बहुसंख्य दलित छात्रों के लिए उच्च शिक्षा के दरवाजे हमेशा-हमेशा के लिए बन्द हो जाना। दूसरी ओर विनिवेश के नाम पर सार्वजनिक उपक्रमों को कौड़ियों के दाम देशी-विदेशी पूँजीपतियों को बेचा जा रहा है जिससे आरक्षण का मुद्दा अपने आप ही दम तोड़ देता है। लेकिन इन सवालों पर आन्दोलन करना तो दूर सवाल तक करना ये पार्टियाँ जरूरी नहीं समझती।

ऐसी स्थिति में सवाल उठता है कि आखिर समस्या कहाँ है? वास्तव में, सरकार जनता से मुँह मोड़ कर लुटेरे पूँजीपतियों और घोटालेबाजों की चाकर बन गयी है। आम जनता को वास्तविक सच्चाई से गुमराह करने के लिए जाति धर्म के झगड़े तथा आरक्षण जैसे हथकंडे अपनाये जाते हैं। इसलिए जाति धर्म के झूठे भेदभाव से ऊपर उठकर ही हमें अपने असली दुश्मन की पहचान करनी होगी।

**--जौनिश**

भारत की तमाम सरकारें नौजवानों को रोजगार उपलब्ध कराने में निकम्मी ही साबित हुई हैं। लेकिन अपना वोट बैंक बढ़ाने के लिए तमाम राजनीतिक पार्टियाँ आरक्षण को चुनावी मुद्दा बनाकर राजनीतिक रोटियाँ सेकने का काम करती हैं, साथ ही सवर्णों में इस भ्रम को पैदा किया जाता है कि दलितों को मिलने वाले आरक्षण की वजह से सवर्णों को नौकरियाँ नहीं मिल पा रही है। लेकिन सच्चाई कुछ और ही है, जिस पर पर्दा डाला जाता है, वह यह है कि एक तरफ तो सरकार नये रोजगार का सृजन नहीं कर पा रही है, दूसरी तरफ बचे-खुचे रोजगार भी समाप्त कर रही है, आये दिन सीटों में कटौती की जा रही है। इस भ्रम के चलते सवर्ण, आरक्षण तथा दलितों को इसका दोषी मान बैठते हैं। लेकिन आँकड़े कुछ और ही बात कहते हैं–

2016 में यूपीएससी में 1099 अभ्यार्थी सफल हुए थे। इन 1099 सीटों के लिए 11 लाख 36 हजार लोगों ने आवेदन किया था। यूपीएससी में 200 नम्बर का प्री एग्जाम होता है। इसमें सामान्य वर्ग की मेरिट 116 अंक थी, ओबीसी की मेरिट 110.66, अनुसूचित जाति की 99.34 और अनुसूचित जनजाति की 96 थी, यानी 200 अंकों के मार्जिन में भी कट ऑफ का अन्तर था मात्र 20 अंकों का रहा, यानी जितने भी लोग सफल हुए, चाहे किसी भी जाति के हों, बेहद मेहनती थे, जिनके अंकों में कोई भारी फासला नहीं था। लेकिन सफल तो मात्र 1099 ही हुए थे, बाकी के 11,34,901 लोग जो सफल नहीं हो सके, वह क्या करें? अपने भविष्य में कोई आशा की किरण ना देखते हुए हताश होकर सवर्ण आरक्षण तथा दलितों पर दोष मढ़ देते हैं।

ऐसे में एक सवाल उठता है कि आरक्षण नहीं होने पर क्या सवर्णों को कोई फायदा होगा। बिल्कुल नहीं, क्योंकि आरक्षण नहीं भी होगा तो भी 1099 सीटों पर इतने ही लोग भर्ती होंगे। बाकी जो लाखों लोग असफल हो रहे हैं और आरक्षण पर अपना दोष मढ़ रहे हैं वह सभी तो भर्ती नहीं हो सकते। तो ऐसे में आरक्षण का कोई मामला नहीं बनता, क्योंकि बाकी के लाखों असफल छात्रों में दलित तथा सवर्ण दोनों हैं। आरक्षण खत्म होने से भी सवर्णों को कोई लाभ नहीं होने वाला, किसी भी पद के लिए उनकी प्रतियोगिता उतनी ही कठिन रहने वाली है जितनी आज है।

# फैक्ट्री या मौत का कुआँ

9 अप्रैल 2018 को दिल्ली के पास सुल्तानपुरी के राजपार्क इलाके में जूता फैक्ट्री में आग लग गयी। इस आग में झुलस कर 4 मजदूरों की दर्दनाक मौत हो गयी। दो महीने पहले बवाना की पटाखा फैक्ट्री में आग लगने से 17 मजदूरों की मौत हो गयी थी। दोनों ही जगहों पर फैक्ट्री के दरवाजे पर ताला लगा हुआ था और वहाँ सुरक्षा का कोई इन्तजाम नहीं था। कुछ ही महीने पहले इन्हीं से मिलती-जुलती दुर्घटना लुधियाना में हुई थी, जहाँ तीन मंजिला प्लास्टिक की फैक्ट्री आग लगने से ढह गयी थी, जिससे दो मजदूरों और दो अग्निशमनकर्मियों की मौत हो गयी। मलबे में कम से कम 12 अन्य लोग भी फँस गये थे। इसमें से कितने लोग जिन्दा बचे, कुछ खबर नहीं। दमकल की 15 गाड़ियाँ आग बुझाने के लिए मौके पर पहुँची थी। लेकिन यह सब तब क्यों, जब कोई दुर्घटना घट जाती है? इस दुर्घटना की खबर पढ़कर प्रवीन, जो पेशे से इंजीनियर हैं, उनका किस्सा याद आ गया, जो कुछ दिन पहले लुधियाना गये थे और वहाँ के औद्योगिक इलाके का आँखों देखा हाल बताया था। लगभग हर जगह ऐसी स्थिति है।

प्रवीन अपनी टीम के साथ लुधियाना की एक फैक्ट्री में गये थे। वहाँ उन्होंने नरक जैसा दृश्य देखा। दुखी होकर उन्होंने बताया कि जिस इलाके में फैक्ट्री है, वहाँ जिन्दा रहना दूभर है। गलियाँ कचरे और गन्दगी से भरी हुई हैं। गन्दगी में धातुओं के बारीक कण और जहरीले रसायन होते हैं। अगर आप इन गलियों से गुजर रहे हों और दुर्भाग्य से हवा चल जाये, तो सारी गन्दगी आपके फेफड़े में उतर जायेगी। वहाँ एक बुद्धा नाला है। नाले का पानी गहरे काले रंग का हो गया है, जिससे बड़ी ही गन्दी बदबू आती रहती है। उसके पास से गुजरने पर उबकाई आती है। स्थानीय लोगों ने बताया कि कभी इसका पानी साफ-सुथरा हुआ करता था, जिसमें सतलुज नदी का पानी बहा करता था।

हम जिस कम्पनी में गये थे, उसका मालिक बहुत मक्कार आदमी था। उसने हमें फैक्ट्री के पास ही एक मकान में टिका दिया। उस मकान में जरूरी सुविधाओं का अभाव था। इससे हम वहाँ अधिक दिन टिक नहीं सके। मैं सोचता हूँ कि उन मजदूरों के स्वास्थ्य का क्या होता होगा, जो वहाँ दिन-रात काम करते रहते हैं? हमने कुछ मजदूरों से भी बात की। उन्होंने बताया कि वे गम्भीर बीमारियों की चपेट में हैं। कई मजदूर बीमारियों के चलते मर जाते हैं, जिससे उनका परिवार सड़क पर आ जाता है।

प्रवीन ने ऐसा दृश्य पहली बार देखा था। वह पहले कभी मजदूरों का पक्षधर नहीं था। लेकिन खुद उसके साथ कुछ ऐसी गुजरी कि वह अपनी बात बताते हुए भावुक हो गया। उसने कहा कि वे मजदूर भी हम लोगों जैसे इनसान ही हैं, जिनकी जिन्दगी का कोई अर्थ नहीं। वे गुलामों की तरह मेहनत करते हैं और कम उम्र में मर जाते हैं। आये दिन लुधियाना की कोई न कोई फैक्ट्री सुरक्षा उपाय ने होने के चलते दुर्घटनाग्रस्त होती ही रहती है, जिनमें कई मजदूर मारे जाते हैं। ऐसी घटनाओं के बारे में भी उन मजदूरों ने हमें बताया। मारे गये मजदूर के परिवार को फैक्ट्री की ओर से कोई मुआवजा नहीं मिलता, क्योंकि मजदूर ठेके पर रखे जाते हैं, जिनका जिक्र किसी रजिस्टर में नहीं होता। इससे मालिक साफ मुकर जाता है कि वे उसकी फैक्ट्री में काम करने वाले मजदूर थे।

बहरहाल, प्रवीन को यह नहीं पता था कि इन सब का असली जिम्मेदार कौन है? उसके लिए सबसे बड़ा जल्लाद फैक्ट्री मालिक है। लेकिन उसने बताया कि इतना होते हुए भी, मजदूर अपने मालिक के खिलाफ विरोध करने की बात सोचते भी नहीं। वे कहते हैं कि अगर मालिक ने फैक्ट्री बन्द कर दी, तो हम कहाँ जायेंगे? प्रवीन ने फैक्ट्री के एक सुपरवाईजर से बात की। उस सुपरवाईजर ने कहा कि तुम्हारी बात ठीक है। मुझे भी मजदूरों की हालत पर दुःख होता है और मैनेजर साहब भी उनसे सहानुभूति रखते हैं लेकिन हम कर भी तो कुछ नहीं सकते। मजदूरों का वेतन बढ़ाने में और फैक्ट्री तथा इलाके की साफ-सफाई में काफी खर्च आयेगा, जो हमें फैक्ट्री के माल के दाम में जोड़ना होगा। कॉम्पिटीशन का जमाना है। दाम बढ़ने से हम बाजार में पिछड़ जायेंगे। प्रवीन ने उससे जब यह सवाल पूछा कि मैनेजर और मालिक अपनी ऊँची आमदनी का खर्च भी तो उसी माल से निकालते होंगे, उसे भी कम क्यों नहीं किया जाता, तो इस बात का सुपरवाईजर के पास कोई जवाब नहीं था। जाहिर है कि लागत कम करने के लिए फैक्ट्रियों में सुरक्षा का इन्तजाम नहीं होता, मजदूरों को बेहद कम मजदूरी दी जाती है और उसके आस-पास नरक से भी बदतर माहौल तैयार किया जाता है।

**--विक्रम प्रताप**

# भारत छोड़कर भागते करोड़पति

न्यू वर्ल्ड वेल्थ संस्था की रिपोर्ट के अनुसार 2017 में 7,000 बहुत अमीर भारतीय अपना बोरिया-बिस्तर समेट कर विदेश भाग गये। इस मामले में इस साल चीन के बाद भारत दूसरे स्थान पर रहा। 2016 में 6,000 और 2015 में 4,000 करोड़पतियों ने देश छोड़ दिया था। इससे साफ पता चलता है कि न केवल करोड़पतियों के भागने का सिलसिला जारी है बल्कि उनकी संख्या में भी बढ़ोत्तरी हो रही है। इसके साथ ही वे जो सम्पदा देश से बाहर ले जा रहे हैं, उसमें भी वृद्धि हुई है। यह एक वैश्विक परिघटना बन गयी है। चीन, तुर्की, इग्लैंड, फ्रांस और रूस के अमीरों ने भी बड़ी संख्या में अपना देश छोड़ दिया है। इन देशों के करोड़पतियों ने अमरीका, यूनाईटेड अरब अमीरात, कनाडा, ऑस्टेलिया और न्यूजीलैंड को अपना नया घर बनाया है। इन सभी देशों में ऑस्ट्रेलिया सबसे ऊपर है। 2017 में 10 हजार करोड़पतियों ने ऑस्ट्रेलिया का रुख किया। इस महा-पलायन के चलते पिछले 10 सालों में ऑस्ट्रेलिया की सम्पत्ति में 83 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। दूसरी ओर इस महा-पलायन से पिछले 10 सालों में अमरीका की सम्पत्ति में मात्र 20 प्रतिशत की वृद्धि हुई। 2017 में दुनिया भर के 9,000 करोडपति अमरीका भाग गये थे। न्यू वर्ल्ड वेल्थ संस्था की रिपोर्ट में ही इस बात का भी जिक्र है कि धनाढ्यों की संख्या के मामले में भारत छठे पायदान पर खड़ा है।

इस महा-पलायन ने कई सवालों को जन्म दिया है। पहला सवाल तो यह कि आखिर ये सभी करोड़पति भारत छोड़कर भाग क्यों रहे हैं? दरअसल, यह किसी से छिपी हुई बात नहीं है कि भारत की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था गहरे संकट का शिकार है। यहाँ की आधी से अधिक आबादी के पास जिन्दगी जीने के लिए मूलभूत जरूरतों का अभाव है। लगभग सभी पार्टियाँ भ्रष्ट हैं और वे जनविरोधी नवउदारवादी व्यवस्था की पोषक हैं। सभी सरकारें सामाजिक कल्याण के कामों से अपना हाथ पीछे खींचती जा रही हैं और मजदूरों-किसानों के हकों को छीना जा रहा है, जिससे गरीबी और बढती जा रही है। देश का आर्थिक ढाँचा चरमरा गया है। अमीर इस देश को आगे बढ़ाने के लिए कोई सामाजिक जिम्मेदारी निभाने के बजाय देश छोड़ देना बेहतर समझते हैं। वे जल्दी से जल्दी अपने धन-दौलत को समेट कर इस नरक से निकल जाना चाहते हैं। धनपिपासू और सुविधाभोगी यह अमीर वर्ग इसी देश में रहकर सारी कमाई करता है और मौका मिलते ही उडनछू हो जाता है। इनमें से नीरव मोदी जैसे कई करोड़पति काली कमाई में लिप्त होते हैं। यह भी उन्हें जल्दी से भाग जाने के लिए बाध्य करता है।

दूसरा सवाल, क्या यह महा-पलायन रुकेगा? इसका जवाब है-- नहीं। मौजूदा राजनीतिक-सामाजिक ढाँचे के अन्दर यह पलायन रुक नहीं सकता, क्योंकि इन करोड़पतियों की साँठ-गाँठ लगभग सभी राजनीतिक पार्टियों से होती है। जैसे विन्सम डायमंड ग्रुप के जतिन मेहता, जो देश छोड़कर भाग चुके हैं, उनके बेटे की शादी गौतम अडानी के भाई की बेटी से हुई है। जबकि पंजाब नेशनल बैंक को लगभग 12 हजार करोड़ की चपत लगाकर फरार होने वाले नीरव मोदी के भाई की शादी मुकेश और अनिल अम्बानी की चचेरी बहन के साथ हुई है। कहने की जरूरत नहीं कि गौतम अडानी और अम्बानी बन्धुओं के नजदीकी सम्बन्ध किस राजनेता के साथ है।

इन सबके बावजूद खुद को राष्ट्रभक्त मानने वाले लोग इन सब पर कोई सवाल नहीं उठाते। उनकी नजर में क्या देश की सम्पदा को लूटकर भागते करोडपति देशद्रोही नहीं हैं। सामाजिक कामों में लगे संगठनों के पास करोड़पतियों को रोकने का कोई एजेंडा नहीं है। सच पूछा जाये तो ज्यादातर सामाजिक संगठन इन्हीं अमीरों के रहमों-करम पर पलते हैं। इसलिए वे अपने आकाओं के खिलाफ सवाल ही नहीं उठाते हैं।

## निजीकरण की वकालत

भारत संचार निगम लिमिटेड (बीएसएनएल) एक सरकारी कम्पनी है और रिलायंस कम्युनिकेशन एक निजी कम्पनी। यूँ तो बीएसएनएल सरकार का बूढ़ा घोड़ा है जिसे दफन करने की पूरी तैयारी है। फिर भी 2016 में, इसका वार्षिक कारोबार तीस हजार करोड़ रुपये था और इस कम्पनी में कर्मचारियों की संख्या दो लाख से भी ज्यादा थी। वहीं रिलायंस कम्युनिकेशन का 2016 में कारोबार लगभग दस हजार करोड़ रुपये था और फुलटाइम और पार्टटाइम कर्मचारियों की कुल संख्या 14,170 थी। यानी बीएसएनएल का कारोबार रिलायंस कम्युनिकेशन के मुकाबले तीन गुना था और वह लगभग पन्द्रह गुना ज्यादा कर्मचारियों को फुलटाइम रोजगार उपलब्ध कराती थी। जहाँ बीएसएनएल अपने वार्षिक कारोबार का लगभग आधा रुपया कर्मचारियों की तनख्वाह, मीटिंग और अन्य सुविधाओं पर खर्च करता है, वहीं रिलायंस, आइडिया, वोडाफोन बड़ी मुश्किल से वार्षिक कारोबार का 5 से 6 प्रतिशत कर्मचारियों की तनख्वाह पर खर्च करते हैं। तो यही है खूबसूरत निजीकरण जिसकी वकालत व्यवस्थापोषक अर्थशास्त्री करते हैं। जिसकी सच्चाई है नौकरियों में भारी कमी और निजी मुनाफे में भारी बढ़ोत्तरी।

# नीरव मोदी भाग गया

1 जनवरी 2018 को एक और उद्योगपति नीरव मोदी रुपये लेकर भाग गया। उसके ऊपर भारत के सार्वजनिक बैंक पीएनबी से कुल 11400 करोड़ रुपये के घोटाले का आरोप है। यह घटना पिछले साल की घटनाओं का ही जारी सिलसिला है। इससे पहले विजय माल्या सार्वजनिक बैंक एसबीआई से 9000 करोड़ और ललित मोदी 7000 करोड़ रुपये लेकर चम्पत हो गये थे। सवाल यह है कि ये पूँजीपति जो हजारों करोड़ रुपये लेकर भाग रहे है, ये रुपये किसके हैं और इससे अर्थव्यवस्था पर कितना दुष्प्रभाव पड़ रहा है? कितनी आसानी से नीरव मोदी की तीन कम्पनियों को पंजाब नेशनल बैंक की एक शाखा से 11400 करोड़ का कर्ज मिल गया, 4-5 साल बाद बैंक को पता चलता है कि कोई बड़ा घोटाला हुआ है। कितनी अजीब बात है। बैंकिंग की दुनिया में बहुत बड़ी गड़बड़ी चल रही है।

आइये, इतिहास में जाकर देखें कि इन सबकी शुरुआत कैसे हुई। 1969 में जब तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी ने बैंकों के राष्ट्रीयकरण का फैसला लिया था, तब तक, 1947 से 1955 के बीच ही 361 निजी बैंक डूब चुके थे और निजी बैंक की विश्वसनीयता पर एक सवालिया निशान खड़ा हो चुका था। इसलिए 14 बड़े बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। इनमें अधिकांश पैसा जनता का था। 1991 में आर्थिक नीतियों में बदलाव की शुरुआत हुई जो वैश्वीकरण, उदारीकरण और निजीकरण के नाम पर किया गया था। 20 जून 1991 को कैबिनेट सचिव नरेश चन्द्र ने भारत के कार्पोरेटीकरण का ब्लूप्रिंट नरसिम्हा राव को उनके शपथ ग्रहण के एक दिन पूर्व सौंपा था। इसके तहत निजी बैंकों को भी कारोबार करने की मंजूरी दी गयी, जिनमें एचडीएफसी, आईसीआईसीआई, यूटीआई और कुछ सीमित रूप से विदेशी बैंक शामिल थे। धीरे-धीरे बीमा क्षेत्र को निजी क्षेत्र के लिए खोला जाना तय था। उस समय तक बैंकिंग और बीमा क्षेत्र में कुछ हद तक एफडीआई की भी मंजूरी तय कर दी गयी थी। लेकिन अभी भी सार्वजनिक बैंकों के निजीकरण का काम पूरा नहीं हुआ है।

बैंक को संकट में डालने का काम पूँजीपतियों ने किया और कमाल की बात यह है कि निजीकरण के तहत इन बैंकों को उन्ही के हाथों में देने की बात हो रही है। लेकिन पहले तो हम देखेंगे की संकट आया तो असल में 1991 के बाद जब से पूँजीपतियों ने लगातार दबाव बनाकर इन बैंकों से बड़ी आसान शर्तों पर ऋण हासिल किये। पिछले 10 सालों में यह काम और भी तेजी से हुआ। निजी बैंकों के बजाय सार्वजनिक बैंकों को इस बात के लिए मजबूर किया गया कि वे ऊर्जा, टेलीकाम, स्टील, रियल स्टेट सेक्टर में बड़े ऋण दें।

पीएनबी ने खुलासा किया कि उसने जो 11,400 करोड़ का घपला पकड़ा है उसमें हीरा कारोबारी ने मुम्बई शाखा से फर्जी गारन्टी पत्र (एलओयू) हासिल कर अन्य ऋण दाताओं से विदेशी ऋण हासिल किया। गारन्टी पत्र के आधार पर एक बैंक किसी अन्य बैंक को ऐसी गारन्टी देता है जिसके आधार पर विदेशी शाखा ऋण देती है। एलओयू बैंक की गारन्टी होती है और इसे विदेशी बैंक से पैसा लेने के लिय जारी किया जाता है और जारी करने के दौरान इस बात पर बैंक सहमती जताता है कि वह क्लाइंट को दिये गये ऋण पर मूल राशि और ब्याज का भुगतान बिना किसी शर्त के करेगा। नीरव मोदी की टीम बिना किसी रुकावट के बैंक के कम्प्यूटर सिस्टम का इस्तेमाल करती थी और खुद ही एलओयू जारी कर देती थी। इन घोटालों में गीतांजलि, गीनी और नक्षत्र जैसे कई बड़ी आभूषण कम्पनियाँ शामिल हैं। ये घटनाएँ इस बात को भी दर्शाती है कि सरकार और पूँजीपतियों के बीच साँठ-गाँठ के बिना क्या इस तरह का घोटाला सम्भव था।

**--दिनेश मौर्या**

## उम्मीद

यह बहुत खतरनाक समय है
हम सभी को
समय की परीक्षा से
पार निकलना है
इस देश को नरक में
बदलने की मुहीम जारी है
हमें उम्मीद बनाये रखनी है
सच के लिए लड़ना है
और एक बेहतर भविष्य का
निर्माण करना है
हर रोज और हर क्षण
कुछ ऐसा करना है
जिससे आने वाली पीढ़ियाँ
एक अच्छे समाज में साँस ले सके।

# युद्ध अपराधी जॉन बोल्टन अमरीकी सुरक्षा सलाहकार नियुक्त

ट्रम्प ने जॉन बोल्टन को अमरीका का नया सुरक्षा सलाहकार नियुक्त कर दिया है। जी हाँ! आपने सही समझा, एक बेहद विवादित और खूँखार व्यक्ति अब अमरीकी राष्ट्रपति डोनॉल्ड ट्रम्प का सुरक्षा सलाहकार बन गया है। जहाँ एक ओर, साम्प्रदायिक और युद्ध उन्मादी लोग जॉन बोल्टन की प्रशंसा करते थक नहीं रहे हैं, वहीं दूसरी ओर, अमन पसन्द लोग उसे एक सिरफिरा और खतरनाक व्यक्ति मान रहे हैं। जॉन बोल्टन पूरे विश्व में 'वार हॉक' यानी 'लड़ाकू गिद्ध' के नाम से कुख्यात है। इसका अर्थ है, एक ऐसा व्यक्ति जो आक्रामक और हिंसक नीतियों का समर्थक है। यह संज्ञा 2003 के इराक युद्ध में सबसे घिनौनी भूमिका निभाने के फलस्वरूप उसे मिली थी।

**जॉन बोल्टन पूरे विश्व में 'वार हॉक' यानी 'लड़ाकू गिद्ध' के नाम से कुख्यात है। इसका अर्थ है, एक ऐसा व्यक्ति जो आक्रामक और हिंसक नीतियों का समर्थक है।**

जॉर्ज बुश सहित जितने भी अधिकारी या नेता युद्ध भड़काने में शामिल थे, उन सब ने भी ईरान युद्ध के प्रति अपना पाला बदल लिया, लेकिन जॉन बोल्टन अपने निर्णय पर अडिग है और वह क्रूरता की किसी भी हद तक जाने को तैयार है। जॉन बोल्टन के ऊपर आरोप है कि उसने सद्दाम हुसैन के खिलाफ, ''जनसंहार के लिए हथियार उत्पादन'' का गलत और झूठा मुकदमा चलाया। यही वह शख्स है जिसने इराक के ऊपर अमरीकी हमले में अहम भूमिका निभायी थी। इस युद्ध ने इराक को ऐसे गृह युद्ध में झोंक दिया, जिसमें 15 साल बाद भी आज इराक जल रहा है। लाखों इराकी मारे गये। लाखों बेघर हुए। यतीम बच्चों की देखभाल करने वाला कोई नहीं रहा। ऐसे में एक बड़ा सवाल उठता है कि जो व्यक्ति इसका सबसे अधिक जिम्मेदार है, उसे सुरक्षा सलाहकार का पद कैसे दिया जा सकता है?

हाल के वर्षों में अमरीका और उत्तरी कोरिया के बीच तनाव अपने चरम पर पहुँच गया है। अब ये सारी घटनाएँ इस ओर इशारा कर रही हैं कि अमरीका अब उत्तरी कोरिया को और बर्दाश्त नहीं करना चाहता है। उत्तरी कोरिया को लेकर जॉन बोल्टन का रुख बहुत खतरनाक है। अगर अमरीका के दबाव के बावजूद उत्तरी कोरिया अपने परमाणु हथियारों पर रोक नहीं लगाता और एकतरफा निशस्त्रीकरण नहीं करता, तो जॉन बोल्टन का सुझाव है कि अमरीका को उत्तरी कोरिया पर हमला कर देना चाहिए। इसका इशारा बोल्टन ने अपने 2003 के सिओल भाषण में ही कर दिया थी, जब उसने उत्तरी कोरिया के राष्ट्रपति किम जोंग को एक 'अत्याचारी तानाशाह' कहकर सम्बोधित किया था।

यदि हम ईरान के मामले में देखें तो हम पायेंगे कि जॉन बोल्टन तो यहाँ तक चाहता था कि इराक से युद्ध के दौरान ईरान पर भी बमबारी कर देनी चाहिए। 2018 में, बोल्टन ने ईरान के ऊपर हमला करने की बात फिर से उठायी, जिससे तेहरान की सरकार विद्रोहियों की सहायता न कर सके। बोल्टन का ईरान के साथ परमाणु हथियारों के सौदे पर विवाद कोई नयी बात नहीं है, यह बात बहुत पुरानी और बेहद मशहूर है। बोल्टन का साथी, माइक पोमपेओ भी ईरान विरोधी है, अब उसको राजसचिव का पद मिल गया है। इसके बावजूद ईरान से राजनयिक स्तर पर सौदा बेहद संदेहास्पद है। इतना ही नहीं बोल्टन ग्वातानामो की खाड़ी में बनी बदनाम अमरीकी जेल का भी समर्थन करता है क्योंकि यह जेल इजरायल में एक दूतावास स्थापित करने में मददगार हो सकती है, जिससे तेहरान और बींजिंग पर दबाव बनाने में आसानी हो सके। बोल्टन के इस हिंसक रवैये के घेरे में न केवल ईरान, इराक या उत्तरी कोरिया ही हैं, बल्कि चीन और एशिया भी है। बोल्टन का अतीत बहुत बदनाम है, जैसे उसने अमरीका के सहयोगियों को अपमानित किया है और संयुक्त राष्ट्र जैसे अन्तर्राष्ट्रीय सहकारी संस्थाओं को भी अपमानित किया है।

यह सब भले ही डोनॉल्ड ट्रम्प की विवादित, राष्ट्रवादी और संक्षरणवादी कार्यशैली के अनुकूल हो, लेकिन यह पूरे विश्व के लिए चिन्ताजनक है। जिस जॉन बोल्टन पर युद्ध अपराधी के तौर पर अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय में मुकदमा चलाया जाना चाहिए था, आज वही अमरीका का सुरक्षा सलाहकार बना हुआ है। इतनी क्रूरता और विवादास्पद घटनाओं से घिरे होने के बावजूद, जॉन बोल्टन को ऐसा सम्मानित पद मिलना दुनिया के पैमाने पर दुर्भाग्यपूर्ण और विचारणीय घटना है।

**--अविनाश कुमार**

# आरटीआई कार्यकर्ताओं की बढ़ती हत्याएँ

9 मार्च को गुजरात के राजकोट जिले के मानेकवाड़ा गाँव निवासी नानजीभाई सोंदावा की छः लोगों द्वारा हत्या कर दी गयी। उन्होंने आरटीआई कानून के तहत गाँव में बनने वाली सड़क में हुए खर्च की जानकारी माँगी थी। सोंदावा ने गाँव के विकास की परियोजनाओं में वित्तीय गड़बड़ियों का खुलासा करने की कोशिश की थी। आरटीआई दायर करने के बाद से ही उनको गाँव के सरपंच और उसके दबंगों द्वारा लगातार डराया और धमकाया जा रहा था।

20 मार्च को नागालैण्ड के जैंतिया हिल्स जिले में राज्य के कोयला क्षेत्र में आरटीआई कार्यकर्ता पोपीन्हुन माजव की हत्या कर दी गयी। माजव सूचना के अधिकार कानून के तहत जैंतिया हिल्स स्वायत्त जिला परिषद (जेएचएडीसी) के द्वारा सार्वजनिक पैसे के दुरुपयोग का खुलासा करना चाहते थे। वे स्थानीय लोगों के हितों के खिलाफ और क्षेत्र की संवेदनशील पारिस्थितिकी को नुकसान पहुँचाने वाली दर्जन भर से ज्यादा सीमेन्ट कम्पनियों का भी पर्दाफाश करने की कोशिश कर रहे थे।

नवम्बर 2014 में उत्तराखण्ड के नैनीताल जिले के आरटीआई कार्यकर्ता राजेश सूरी को ट्रेन में यात्रा के दौरान जहर देकर मार दिया गया। उन्होंने उत्तराखण्ड के कई इलाकों में भूमि घोटालों का खुलासा किया था। पहले पुलिस प्रशासन ने उनकी मौत को हादसे का नाम देकर पर्दा डालने की कोशिश की। अक्टूबर 2015 में फोरेंसिक जाँच की रिपोर्ट में राजेश सूरी को जहर दिये जाने की पुष्टि हुई घटना के लगभग एक साल बाद उत्तराखण्ड हाईकोर्ट ने उन्नीस लोगों को तलब किया जिसमें सीबीआई और डीजीपी उत्तराखण्ड भी शामिल हैं।

जनसूचना का अधिकार-2005 कानून बनाते समय यह दावा किया गया था कि यह भ्रष्टाचार के खिलाफ लड़ाई में हथियार बनेगा। लेकिन यही कानून अब आरटीआई कार्यकर्ताओं के उत्पीड़न और हत्या का कारण बनता जा रहा है। कॉमनवेल्थ ह्यूमन राइट्स इनीशिएटिव (सीएचआरआई) के आँकड़ों के अनुसार 2005 से अब तक ऐसे 67 कार्यकर्ताओं की हत्या की जा चुकी है। लगभग 400 कार्यकर्ताओं के ऊपर किसी मामले में जानकारी माँगने पर हमले किये गये। पूरे देश के स्तर पर आरटीआई कार्यकर्ताओं पर हमले और हत्या के मामले में जहाँ महाराष्ट्र अव्वल है, वहीं गुजरात और उत्तर-प्रदेश दूसरे स्थान पर हैं। देश में ऐसा कोई राज्य नहीं है जहाँ आरटीआई कार्यकर्ताओं की हत्या और उन पर हमले के मामले सामने न आये हों।

मुरादाबाद के आरटीआई कार्यकर्ता सलीम बेग ने सूचना के अधिकार कानून के तहत प्रधानमंत्री कार्यालय और दिल्ली सरकार से सवाल किया था कि 2005 में आरटीआई कानून लागू होने के बाद अब तक कितने कार्यकर्ताओं का उत्पीड़न करने, जेल भेजे जाने और उनकी हत्या के मामले सामने आये। इन मामलों में क्या कार्रवाई की गयी। केन्द्र और दिल्ली सरकार ने इसके बाबत किसी भी तरह की जानकारी देने से साफ तौर पर इनकार कर दिया है। सूचना का अधिकार कानून-2005 में इस बात का विशेष प्रावधान रखा गया था कि जो व्यक्ति सार्वजनिक प्राधिकरण के कामकाज में पारदर्शिता और उत्तरदायित्व से सम्बन्धित सूचनाओं की माँग के लिए याचिका दायर करेगा, उसकी पहचान पूरी तरह से गुप्त रखी जायेगी। पूरे देश में आरटीआई कार्यकर्ताओं की हत्या इस बात का संकेत है कि उनकी पहचान को गुप्त नहीं रखा गया।

अब सवाल उठता है कि इन कार्यकर्ताओं पर हमले या उनकी मौत पर सरकारें अपना मुँह क्यों बन्द रखती हैं? ऐसा क्यों होता है कि स्थानीय प्रशासन उनकी हत्या को आत्महत्या या फिर किसी हादसे का रूप देने की कोशिश करता है? ज्यादातर मामलों में मीडिया लोगों का ध्यान तभी आकर्षित करता है जब किसी कार्यकर्ता को मौत के घाट उतार दिया जाता है या फिर हमले में उसे गम्भीर रूप से चोटें आती हैं।

कार्यकर्ताओं की हत्या या उन पर हमले की घटनाओं से पता चलता है कि ज्यादातर मामले भूमि घोटाले, मनरेगा में हुए वित्तीय घोटाले और निजी कम्पनियों के द्वारा किये गये भ्रष्टाचार के हैं। इन मामलों में हत्या के आरोप ग्राम पंचायतों के सरपंच, भूस्वामियों, सरकारी अधिकारियों और राजनेताओं पर हैं। यह सम्पत्तिशाली वर्ग नहीं चाहता है कि उनकी गतिविधियों का जनता के सामने खुलासा हो। आरटीआई कार्यकर्ताओं के दबाव में इनके द्वारा सार्वजनिक धन की लूट का खुलासा तो हो जाता है लेकिन कार्यकर्ता की जान खतरे में पड़ जाती है।

यहाँ के शासक वर्ग ने 1990 में अमरीका के नेतृत्व में निजीकरण, उदारीकरण और वैश्वीकरण की नीतियों को प्रत्येक क्षेत्र

में लागू किया। जिसके चलते तमाम सार्वजनिक कम्पनियों को बीमार घोषित करके उनको देशी-विदेशी पूँजीपतियों को सौंप दिया गया। शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवहन, प्राकृतिक संसाधन आदि क्षेत्रों को निजी हाथों में कौड़ियों के भाव बेच दिया गया। इन नीतियों का गाँव और शहरों में समर्थन प्राप्त करने के लिए स्थानीय दबंगों, नौकरशाहों और माफियाओं का सहारा लिया गया। देवरिया के कामेश्वर यादव ने मनरेगा की सिंचाई परियोजना के भ्रष्टाचार में शामिल अधिकारियों, राजनेताओं, ठेकेदारों और बिचौलियों के बीच साँठ-गाँठ का खुलासा किया था। 6 जुलाई 2008 को उनकी हत्या कर दी गयी थी। इसी तरह 20 जुलाई 2010 को गुजरात में अमित जेठवा की हत्या कर दी गयी थी। उनकी खता यही थी कि उन्होंने गिर वन क्षेत्र में अवैध खनन का पर्दाफाश करने के लिए आरटीआई कानून का इस्तेमाल किया था। इस मामले में सीबीआई ने भाजपा सांसद दीनू बोगा को गिरफ्तार किया था।

मानव सुरक्षा अधिकारों के प्रति संवेदनशील आरटीआई कार्यकर्ताओं के लिए भारत देश पूरी तरह से असुरक्षित है। मानव अधिकार सुरक्षा की तरह, बहुत बड़ी संख्या में आरटीआई कार्यकर्ताओं का कोई संगठन नहीं है। भ्रष्टाचार और अवैध गतिविधियों के खिलाफ वे ज्यदातर अकेले लड़ते हैं। उन्हें इस बात का कतई अन्दाजा नहीं होता है कि वे जिसके खिलाफ लड़ाई लड़ रहे हैं वे एक संगठित ताकत हैं जिनके साथ पूरी मीडिया है, पुलिस प्रशासन के साथ-साथ न्यायिक व्यवस्था भी है। अमित जेठवा जैसे ईमानदार और संवेदनशील कार्यकर्ताओं की हत्या कर दी जाती है और उसमे शामिल अभियुक्तों को चुटकियों में क्लीन चिट दे दी जाती है।

आरटीआई कार्यकर्ताओं की हत्या और हमले की इतनी घटनाओं के सामने आ जाने के बाद अब यह सोचने की जरूरत है कि आखिर क्या किया जाये? वो कौन सा रास्ता होगा जिस पर चलकर इन लुटेरी संगठित ताकतों का मुकाबला किया जा सकता है? जाहिर है कि भ्रष्टाचार में लिप्त संगठित गिरोहों का मुकाबला अकेले-अकेले सम्भव नहीं। इसके लिए मजबूत संगठन और जनबल की सक्रिय भागीदारी जरूरी है। जब सरकार खुद ही अपने बनाये कानूनों की धज्जी उड़ाती हो, वहाँ व्यक्तिगत प्रयास आत्मघाती साबित होता है। छोटी से छोटी लड़ाई संगठन के बिना सफल नहीं हो सकती।

**--सुनील कुमार**

# क्यूबा में चुनाव

हाल ही में क्यूबा में सम्पन्न हुए चुनावों में मिगुएल डियाज कानेल नये राष्ट्रपति और राउल कास्त्रो के उत्तराधिकारी चुने गये हैं। नयी संसद में 53 प्रतिशत महिलाएँ चुनकर आयी हैं जो समाजवादी क्यूबा में महिलाओं की स्थिति बयान करती हैं। इनमें करीब एक तिहाई महिला सांसद अश्वेत है, जो नस्लवादी अमरीका, कनाडा, ब्राजील व अन्य पूँजीवादी लोकतंत्र में एक सपना ही है।

क्यूबा के संसदीय चुनाव में धनबल और बाहुबल का नंगा नाच नहीं होता है। संसद में क्षेत्रीय प्रतिनिधियों के अलावा विभिन्न छात्र प्रतिनिधि चुने जाते हैं जिनका चुनाव छात्र करते हैं, विभिन्न फैक्ट्री समितियों के प्रतिनिधि चुने जाते हैं जिनका चुनाव वहाँ के मजदूर करते हैं, कृषि कोआपरेटिव व स्टेट कृषि फार्म के अपने-अपने प्रतिनिधि होते हैं जिनका चुनाव कोआपरेटिव फार्म के किसान और स्टेट फार्म के सरकारी कृषि कर्मचारी करते हैं। वैज्ञानिक समुदाय, शिक्षक समुदाय, स्वास्थ्यकर्मी भी अपने-अपने प्रतिनिधि चुनकर संसद में भेजते हैं। यह सब बातें स्पष्ट करती हैं कि क्यूबा में किसी भी पूँजीवादी देश से भी अधिक लोकतंत्र है, दरअसल क्यूबावासी ऊँचे स्तर के लोकतंत्र में यकीन करते हैं जो हर स्तर पर जनता के हितों के साथ खड़ा होता है और पूँजीवादी लोकतंत्र उसके सामने कहीं नहीं टिकता।

क्यूबा भौगोलिक संसाधनों की कमी, कृषि पर निर्भरता और अमरीकी साम्राज्यवाद द्वारा पिछले 6 दशक से लगाये गये अमानवीय आर्थिक प्रतिबंधों की वजह से सकल घरेलू उत्पाद के मामले में दुनिया के सबसे गरीब देशों में आता है। लेकिन इसके बावजूद शिक्षा, स्वास्थ्य, जीवनस्तर, आवास, मूलभूत सुविधाओं के तमाम अन्तरराष्ट्रीय मानकों पर दुनिया के अग्रणी राष्ट्रों में गिना जाता है और स्कॅन्डिनेवियन देशों को टक्कर देता है। अमरीका की हालत इन तमाम मानव विकास सूचकांकों में बहुत बुरी है।

यूनिसेफ ने पिछले दिनों क्यूबा को बच्चों के अधिकारों का सबसे बड़ा हिमायती घोषित किया है। क्यूबा दुनिया का पहला देश है जहाँ से शिशु और बाल कुपोषण पूरी तरह मिटा दिया गया है। क्यूबा पहला ऐसा देश है जहाँ माँ से बच्चे को होने वाले एड्स के संक्रमण को भी पूरी तरह खत्म कर दिया गया है।

क्यूबा अपने देश ही नहीं दुनिया भर के देशों– अफ्रीका और एशिया के गरीब देशों में डॉक्टर और शिक्षक भारी संख्या में भेजकर अपने मानवतावादी कर्तव्यों का ईमानदारी से निर्वाहन करता है।

**-- श्रवण यादव**

# एयर इंडिया का निजीकरण : लूट की ओर अगला कदम

हाल ही में सरकार ने सार्वजनिक क्षेत्र की विमानन कम्पनी एयर इंडिया के 76 फीसदी हिस्से को निजी हाथों में सौपने का फैसला किया है। सरकार का कहना है कि एयर इंडिया लम्बे समय से घाटे में चल रही है और कई बार इसमें पूँजी डालने के बाद भी कम्पनी की वित्तीय स्थिति में सुधार नहीं हो सका। एयर इंडिया कम्पनी के ऊपर कुल 50,000 करोड़ रुपये का कर्ज बताया जा रहा है। इसके चलते सरकार ने इसे निजी हाथों में सौंपने का निर्णय लिया है। नीति आयोग पिछले वर्ष एयर इंडिया के पूर्ण निजीकरण का सुझाव दे चुका है। वित्त मंत्री अरुण जेटली भी एयर इंडिया के निजीकरण की वकालत कर चुके हैं। केन्द्रीय मंत्री जयंत सिन्हा का कहना है कि उनकी सरकार एयर इंडिया को महाराजा बनाना चाहती है।

भारत सरकार ने पहली बार इस विमान कम्पनी को निजी हाथों में सौंपने के लिए 28 जून 2017 को एक समिति बनायी थी। "अर्नस्ट एण्ड यंग एल एल पी इंडिया" को एयर इंडिया रणनीतिक विनिवेश प्रक्रिया का सलाहकार नियुक्त किया गया जो बहुराष्ट्रिय व्यवसायिक सेवायें देने वाली अमरीकी कम्पनी है। एयर इंडिया कम्पनी वास्तव में एयर इंडिया एक्सप्रेस और एयर इंडिया एसटीएल लिमिटेड की संयुक्त उद्यम है। दोनों की कम्पनी में बराबर की हिस्सेदारी है।

भारत में हवाई जहाज इस्तेमाल करने वालों की संख्या बढ़ती जा रही है। वर्ष 2017 में देश के अन्दर हवाई यातायात 17.4 प्रतिशत बढ़कर 10 करोड़ की सीमा को पार कर गया। इसका कारण टिकट कीमतों में कमी, माध्यम वर्ग की आय में वृद्धि और नयी उड़ानों का शुरू होना बताया गया है। एयर इंडिया ने 2015-16 में 105 करोड़ रुपये का परिचालन लाभ कमाया था। विमानन बाजार के इतना बढ़ने पर भी एयर इंडिया घाटे में कैसे जा सकती है? फिर भी सरकार एयर इंडिया को निजी हाथों में क्यों सौंपना चाहती है?

इंडिया मार्केट फोरकास्ट की रिपोर्ट के मुताबिक अगले बीस वर्षों के दौरान भारत में यात्री और सामान के परिवहन वृद्धी को देखते हुए उसे 1,750 नये यात्री विमानों की जरूरत पड़ेगी और जरूरतों को पूरा करने के लिए 1,320 नये एकल पथ विमान और 430 चौड़ी बॉडी वाले विमानों की जरूरत होगी। इसके बाद भारत 2019-20 तक दुनिया का तीसरा सबसे बड़ा विमानन बाजार होगा। कनाडा की विमान निर्माता कम्पनी एम्ब्रेयर के अनुसार क्षेत्रीय उड़ाने बढेंगी जिसके चलते ऐसे विमानों की आवश्यकता होगी जो छोटे एयरपोर्ट पर यात्रियों की जरूरतों को पूरा कर सकें। यह कम्पनी क्षेत्रीय उड़ानों को ध्यान में रखकर ई-175 मॉडल विमान निर्माण करती है। एम्ब्रेयर भारत के बाजार में अपने विमानों को बेचकर मुनाफा कमाना चाहती है।

यदि पिछले कुछ सालों पर नजर डालें तो ऐसे क्षेत्रों का निजीकरण तेजी से किया गया है जिनका बाजार तेजी से बढ़ रहा है जैसे कि शिक्षा, दूरसंचार और चिकित्सा। विमानन भी एक ऐसा ही क्षेत्र है जिसमें आगे आने वाले सालों में मुनाफा कमाने की अपार सम्भावनाएँ हैं। इसलिए सरकार सार्वजनिक क्षेत्र की कम्पनी एयर इंडिया को देशी-विदेशी पूँजीपतियों के हाथों में सौंप देना चाहती है। एशिया और उत्तरी अमरीका एयर बस के व्यापार प्रमुख जस्टवान डेर के अनुसार अगले 20 वर्षों में हवाई यात्रिओं की संख्या में 5 गुना वृद्धी होगी। इससे विमानन बाजार तेजी से बढ़ेगा। जिससे होने वाले मुनाफे को प्राइवेट कम्पनियाँ लूटना चाहती हैं। ऐसा तभी सम्भव है जब सार्वजनिक क्षेत्र की कम्पनियों का मालिकाना निजी हाथों में सौंपा जाये।

कम्पनी के निजीकरण से उसमें काम करनें वाले कर्मचारियों पर बुरा प्रभाव पड़ेगा। ताजा आँकड़ों के अनुसार एयर इंडिया में कुल 13,868 कर्मचारी हैं। निजीकरण के बाद इन कर्मचारियों की नौकरी पर तलवार लटक रही है। 400 संविदा कर्मियों को पहले ही निकाला जा चुका है। सरकार का कहना है कि इन कर्मचारियों को एक साल तक नहीं निकाला जायेगा। सवाल एक साल का नहीं है। एक साल के बाद इन कर्मचारिओं का क्या होगा? इसका जवाब सरकार के पास नहीं है और ना ही देना चाहती है। इस क्षेत्र में 2017 से ही एक भी स्थायी नियुक्ती नहीं हुई है।

सरकार में बैठे लोग एयर इंडिया का निजीकरण इसलिए कर रहे हैं क्योंकि वे देशी-विदेशी पूँजीपतियों के साथ मिलकर बेतहाशा मुनाफा कमाना चाहते हैं। एयर इंडिया का निजीकरण करने से निजी कम्पनियों की लूट की राह और आसान हो जायेगी।

इसमें कोई शक नहीं है कि निजीकरण से जनता को कोई फायदा नहीं होगा उल्टे कम्पनी में काम करनें वाले लोगों की नौकरी चली जायेगी और नयीं भर्तियाँ पूर्णतया अस्थायी होंगी। कर्मचारियों को कम वेतन दिया जायेगा कम्पनी में काम करने वाले लोगों का जीवन स्तर गिर जायेगा। कम्पनी का मुनाफा बेतहाशा बढ़ जायेगा। जिसका फायदा उन निजी कम्पनियों को होगा जो इसका अधिग्रहण करेंगी।

**-- सन्देश कुमार**

# राष्ट्रीय औद्योगिक क्षेत्र में कैंसर की महामारी

हरियाणा स्वास्थ्य सर्वेक्षण 2015 के अनुसार पूरे राज्य में ही कैंसर तेजी से फैल रहा है। भारत में कैंसर के कारण मरने वाले लोगों में 39 फीसदी हरियाणा से है। पिछले कई साल की तुलना में 2017 में कैंसर बहुत ज्यादा लोगों की मौत कारण रहा है। इस रिपोर्ट के अनुसार सबसे ज्यादा कैंसर ग्रसित जिला है फरीदाबाद राष्ट्रीय औद्योगिक क्षेत्र, खासकर फरीदाबाद नहर पार इलाके में कैंसर तेजी से फैल रहा है। उस रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि इलेक्ट्रोप्लेटिंग कारखानों और अन्य कारखानों का कचरा भी कैंसर फैलाने का एक मुख्य कारण है। राष्ट्रीय ग्रीन ट्रिब्यूनल ने कुछ कम्पनियों को कचरा शोधन करने का नोटिस भी दिया है, लेकिन कम्पनियों का कहना है कि अब तक उनके पास नोटिस नहीं आया।

आजकल स्वास्थ्य और पर्यावरण मंत्रालय सिनेमा या टीवी के माध्यम से तम्बाकू सेवन के चलते होने वाले कैंसर से बचने के लिए अपील कर रहा है। बड़े भावुक तरीके से हमें इस बात पर सहमत कराया जाता है कि कैंसर के लिए मरीज खुद ही जिम्मेदार है। लेकिन यह 'खुबसूरत' जागरूकता अभियान जिस चीज को छुपाता है वह और भी भयावह है। कुछ तथ्य शायद हमें यह बात समझने में मदद करेंगे। पिछले साल सर्दी में भारी धुएँ में हानिकारक धातुकण की मात्रा विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा तय किये गये मानक से 30 गुणा ज्यादा थी जो किसी इनसान के फेंफड़े में 50 सिगरेट के धुएँ का असर डालने के लिए काफी है। कोलकाता के चित्तरंजन कैंसर शोध संस्थान के एक शोध का नतीजा है कि दिल्ली में 22 लाख स्कूली बच्चों के फेंफड़े की हालत इतनी बिगड़ गयी है कि उम्रभर सुधर न सके। शोध जर्नल दी लैंसेट ने अपने शोध में पाया है कि सन 2015 में सिर्फ वायु प्रदूषण के चलते भारत में 25 लाख लोगों को जान गवाँनी पड़ी। यह संख्या सन 2012 में 6 लाख थी। उनमें से बहुत से ऐसे लोग थे जो धुम्रपान या तम्बाकू सेवन नहीं करते थे। लेकिन उनको फेंफड़े का कैंसर था। भारतीय आयुर्विज्ञान शोध संस्थान के 2010 के एक शोधपत्र के मुताबिक उस साल तम्बाकू सम्बन्धित कैंसर पीड़ितों कि संख्या 2,63,523 थी, जबकि दूसरे कारणों से कैंसर पीड़ित लोगों की संख्या 5,64,326 थी। इस पत्र का कहना था कि सन 2015 और 2020 में तम्बाकू के कारण कैंसर ग्रसित लोगों की संख्या क्रमशः 2,88,921 और 3,16,734 होगी, जबकि दूसरे कारणों से कैंसर के चपेट में आने वाले लोगों कि संख्या क्रमशः 6,29,933 और 7,02,685 होगी।

इन तथ्यों से साफ पता चलता है कि तम्बाकू सेवन कैंसर का एक कारण है, लेकिन एकमात्र कारण नहीं। लेकिन हमारे स्वास्थ्य के बारे में चिन्तित रहनुमा सिर्फ तम्बाकू का सेवन करने वालों को दोषी ठहराकर अपनी जिम्मेदारी से हाथ धोना चाहते हैं। तम्बाकू उत्पादन पूरी तरह बन्द करने में भी उनकी कोई कोशिश नजर नहीं आती। उल्टा अक्सर यह तर्क देते हैं कि तम्बाकू उत्पादन क्षेत्र बहुतों को रोजगार देता है और उससे सरकार को टैक्स भी मिलता है। इसलिए इन क्षेत्रों को बन्द करना फायदेमन्द नहीं है। पर किसके लिए फायदेमन्द नहीं है? जो वहाँ काम करते हैं? जो कैंसर का शिकार हो रहे हैं? या जो इन क्षेत्रों से अरबों-खरबों का मुनाफा कमा रहे है? क्या पर्यावरण और स्वास्थ्य मंत्रालय वाकई हमारी जिन्दगी के बारे में चिंतित हैं?

इतनी भारी संख्या में फेंफडे की बीमारी तथा कैंसर फैलने के लिए जिम्मेदार कौन है? कम्पनियों को सरकार धड़ल्ले से पानी, हवा, मिट्टी प्रदूषित करने की अनुमति दे रही है। इस गन्दगी के चलते अगली पीढ़ी के फेफड़ों को पहले से ही कैंसर सम्भावित अंग बना दिया गया है। कैंसर से बचने के लिए क्या किसी भी तरह का उपाय उनके लिए काफी होगा?

विकास के नाम पर जंगल, नदी, पहाड़ और हवा में जहर फैलाया जा रहा है। हरियाणा के फरीदाबाद जिले को भी विकास के लिए ही राष्ट्रीय औद्योगिक क्षेत्र बनाया गया था। आस-पास के रहने वालों के लिए उसने तोहफे में कम दिहाड़ी मजदूरी और जानलेवा कैंसर दिया है। इसका फायदा उठाकर निजी अस्पतालों ने भी वहाँ 'सुपर-स्पेशियलिटी' अस्पताल खोल लिया है। कमरतोड़ मेहनत के बाद कुछ पैसा मुश्किल से मिल भी जाये तो वह अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए नहीं, बल्कि इन लुटेरे अस्पतालों का बिल चुकाने में खर्च होता है। क्या इन गन्दगी और प्रदूषण फैलाने वाले कारखानों की मौजूदगी और सरकार की उपेक्षापूर्ण रवैये के होते कैंसर से बचना मुमकिन है?

**-- अमित इकबाल**

# बेरोजगारी बड़ी बिमारी

व्यक्ति अपनी आजीविका चलाने के लिए कुछ निश्चित काम करता है, वही उसका रोजगार होता है। हममें से प्रत्येक को किसी न किसी स्तर पर अपना जीवनयापन करने के लिए कोई न कोई काम चाहिए जिससे जिन्दगी को आसानी से जिया जा सके।

अपनी पसन्द का रोजगार पाने के लिए हम तमाम तरह की डिग्रियाँ हासिल करते हैं, लेकिन जितना समय और पैसा हम उस पढ़ाई में लगाते हैं क्या उतने लायक कोई नौकरी हमें मिल पायेगी, इस बात की कोई गारन्टी नही है। बी टेक, एम टेक किये हुए छात्र की आज क्या दुर्दशा है यह अब किसी से छुपा नहीं है। और यही हाल बीए, बीएससी, एमए, एमएससी या पीएचडी के छात्रों की भी है, जो कॉलेज खत्म होने से पहले ही एक अच्छी संगठित क्षेत्र की नौकरी पाने की लालसा में कोचिंग सेंटर के चक्कर काटने लगते हैं। कोचिंग सेंटर में पढ़ने वाले लड़कों का एक औसत खर्चा निकाला जाये तो 1200 रुपये महीना फीस, 6000 रुपये महीना खाना-रहना और 1000 रुपये आने जाने का जोड़कर 8200 रुपये महीना का खर्चा है। और अगर कोचिंग क्लास एक साल से ज्यादा चल गयी तो 87,400 रुपये के आस-पास का सलाना खर्चा होगा जो कि एक गरीब या मजदूर वर्ग के लिए तो मुमकिन नहीं है। और कोचिंग में पढ़ने के बाद आप हताश होंगे या उनका मनोबल बढ़ेगा यह सब सरकार की नीतियों और नौकरियाँ देने की संख्या पर पूरी तरह निर्भर है। जिस संगठित क्षेत्र की नौकरी की बात ऊपर कही गयी है, असल में उसका मतलब क्या है यह जानना भी आवश्यक है।

संगठित क्षेत्र में नियुक्ति में 3 शर्तें लागू होती है-- औपचारिक नियुक्ति पत्र, वेतनसहित कुछ छुट्टियाँ और स्वास्थ्य की जिम्मेदारी। ऐसी नौकरी है ही कितनी? भारतीय अर्थव्यवस्था में अनौपचारिक कर्मचारियों की संख्या लगभग 90 प्रतिशत से ज्यादा है। इसके बावजूद इस क्षेत्र में किसी भी 'रोजगारशुदा' व्यक्ति के लिए ये गारन्टी भी नहीं है कि साल में 365 दिन उसे काम मिले।

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने 2013-14 में लोकसभा चुनाव प्रचार के दौरान युवाओं को हर साल 2 करोड़ रोजगार देने का वादा किया था। हालाँकि बीते चार सालों में रोजगार देने के मामले में मोदी सरकार का प्रदर्शन बहुत बुरा रहा है। आर्थिक सहभागिता और विकास संगठन (ओईसीडी) के सदस्य देशों यानी तथाकथित विकसित देशों में बेरोजगारी दर 6.1 फीसदी है जबकि भारत सरकार का दावा है कि हमारे यहाँ बेरोजगारी की दर महज 3.5 फीसदी है। इस तथ्य को अगर सही माना जाये तो विकसित देशों से मजदूरों को भारत आना चाहिए था क्योंकि यहाँ रोजगार ज्यादा है, लेकिन असलियत इसके विपरीत है। संयुक्त राष्ट्र श्रम संगठन की रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2018 में बेरोजगारी बढ़ सकती है यानी संगठित क्षेत्र में नये रोजगार बन्द ही समझे जायें। अब इस स्थिति में युवाओं को न चाहते हुए भी असंगठित क्षेत्र की तरफ जाना ही पड़ेगा।

यूएनडीपी की एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में काम करने वाले लोगों में से 92 फीसदी लोग अनौपचारिक रूप से काम करते हैं। इसी रिपोर्ट के अनुसार ग्रामीण इलाकों में 96 फीसदी और शहरी इलाकों में 79 फीसदी रोजगार अनौपचारिक हैं। इस परेशानी का प्रधानमंत्री ने एक और हल निकाला है, स्वारोजगार। यानी नौजवान खुद ही रोजगार का कोई नया रास्ता निकाले। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के अनुसार ग्रामीण इलाकों में जो लोग नियमित रूप से काम करते हैं, वे महीने में औसत 7000 रुपये से कम और शहरों में 11000 रुपये से कम कमाते हैं। इसी रिपोर्ट के अनुसार ग्रामीण इलाकों में स्वरोजगार करने वालों की कमाई महीने में 3000 रुपये के आस-पास है। प्रधानमंत्री मुद्रा योजना से लाभान्वित 1 करोड़ लोगों की यही हालत है।

वहीं दूसरी ओर वैश्विक गुलामी सूचकांक के अनुसार गुलामी की स्थिति में जीने वाले लोगों की संख्या भारत में सबसे ज्यादा है। बांग्लादेश, चीन और पाकिस्तान आदि देश इस मामले में भारत से काफी बेहतर स्थिति में हैं।

बेरोजगारी की बड़ी और बढ़ती गम्भीर समस्या के बारे में कोई प्रधानमंत्री से पूछता है तो वे अपने विदेशी उड़ान भरते-भरते धड़ल्ले से कह देते हैं कि पकौड़ा बेचना भी रोजगार है और गाड़ी साफ करना भी एक रोजगार है। अगली बार पूछा तो वे कहेंगे कि खम्भा गाड़कर उस पर चढ़ो-उतरो, यही स्थायी समाधान है।

**-- शालिनी**

# विश्वविद्यालयों की स्वायत्तता या निजीकरण

**--राजकमल**

सरकार ने 62 विश्वविद्यालयों को स्वायत्त करने का फैसला लिया है। केन्द्रीय मानव संसाधन मंत्री ने इसे ऐतिहासिक फैसला बताते हुए कहा कि अब संस्थानों को पाठ्यक्रम तय करने की आजादी होगी। ये विश्वविद्यालय पहले विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी) के मातहत आते थे। यूजीसी इन विश्वविद्यालयों को फंड देता था, इनके पाठ्यक्रम निर्धारित करता था, इनकी फीस तय करता था और इनमें कर्मचारियों की नियुक्ति करता था। अब स्वायत्तता के तहत इनको यूजीसी से मुक्त कर दिया जायेगा। अब इनकी फीस, पाठ्यक्रम, कर्मचारियों की भर्ती इन विश्वविद्यालयों को चलाने वाले प्रबंधक तय करेंगे।

इस नीति के खिलाफ देश के तमाम विश्वविद्यालयों में छात्र और शिक्षक प्रदर्शन कर रहें हैं। पुलिस-प्रशासन प्रदर्शन कर रहे छात्रों और शिक्षकों पर लाठी डंडे भांज रही है। छात्र नेताओं को निशाना साधा जा रहा है। जो शिक्षक इसका विरोध कर रहे हैं, उनको पद से हटाया जा रहा। जेएनयू के छात्र और शिक्षक जेएनयू से संसद मार्ग तक सरकार की इस नीति के खिलाफ शान्तिपूर्ण मार्च निकाल रहे थे। जिन पर दिल्ली पुलिस ने लाठीचार्ज किया। छात्राओं के साथ बदसलूकी की गयी। दिल्ली विश्वविद्यालय शिक्षक संघ (डुटा) ने भी इस फैसले का विरोध किया है। दिल्ली विश्वविद्यालय में 5000 अस्थायी शिक्षक रखे गये हैं। इनका वेतन 60,000 रुपये प्रतिमाह है और इनको सिर्फ चार महीने के लिए नौकरी पर रखा जाता है। कई शिक्षक 10-15 साल से पढ़ा रहे हैं, इसके बावजूद उनकी स्थायी नियुक्ति नहीं हो रही है। इन विश्वविद्यालयों में एमफिल और पीएचडी की सीटें लगातार घटाई जा रही हैं।

यूजीसी के जरिये विश्वविद्यालयों को जो फंड मिलता था, उससे छात्रों को कम फीस भरनी पड़ती थी। फीस कम होने की वजह से निम्न और मध्यम वर्ग के छात्र और छात्राएँ भी पढ़ पाती थीं, जिनमें दलित, आदिवासी और पिछड़े वर्ग के विद्यार्थी भी होते थे। सरकार ने हायर एजुकेशन फंडिंग एजेंसी (हेफा) नाम की संस्था बनायी है। अब यूजीसी से फंड नहीं मिलेगा, इसलिए विश्वविद्यालयों और कॉलेजों को हेफा से लोन दिया जायेगा। यूजीसी विश्वविद्यालयों और कॉलेजों को 30 फीसदी फंड खुद इकठ्ठा करने का दवाब दे रहा है। दिल्ली विश्वविद्यालय में इस बात के लिए दबाव बनाया गया कि जब तक फंड इकठ्ठा नहीं करेंगे तब तक वेतन आयोग लागू नहीं किया जायेगा। विश्वविद्यालय छात्रों से 30 फीसदी फंड फीस वृद्धि के रूप में वसूलेंगे। पंजाब विश्वविद्यालय का एक तकनीकी शिक्षण संस्थान जो शिक्षकों को प्रशिक्षण देता है और जहाँ एम टेक और पीएचडी की पढ़ाई भी होती है, फंड में कटौती के कारण पीएचडी के छात्रों का वजीफा रोक दिया गया। यहाँ हॉस्टल में जिस काम के लिए 6 सफाई कर्मचारी होते थे, अब केवल एक ही सफाई कर्मचारी से काम चलाया जा रहा है। अगले वर्ष तक फीस में वृद्धि होने की सम्भावना भी है।

सरकार शिक्षा बजट में लगातार कटौती करती जा रही है। इस बार शिक्षा बजट 49,000 करोड़ से घटाकर 25,000 करोड़ कर दिया गया। शिक्षा का बजट कम करने के कारण आइआइएम जैसे संस्थानों की फीस 2 लाख रुपये से बढ़कर 15 लाख रुपये प्रति वर्ष हो गयी जिसका खामियाजा निम्न और मध्यम आय वाले तबके से आने वाले छात्र और छात्राओं को भुगतना पड़ेगा।

शिक्षा बजट में कटौती के चलते एससी, एसटी और ओबीसी छात्रों की छात्रवृत्ति खत्म की जा रही है। इन तबकों से आने वाले छात्र उच्च शिक्षा से वंचित हो जायेंगे। पहले ये छात्र गरीबी के बावजूद किसी तरह पढ़ लिख जाते थे, लेकिन अब सरकार की इन नीतियों के कारण उनको उच्च शिक्षा नहीं मिल पायेगी। ऐसा नहीं है कि छात्र और शिक्षक सरकार की इन जनविरोधी नीतियों को चुपचाप स्वीकार कर रहे हैं बल्कि कई जगह इसके खिलाफ जोरदार प्रदर्शन भी हुए हैं। छात्रवृत्ति रोकने और फीस बढ़ाने के खिलाफ टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइन्स के चारों कैम्पसों--मुम्बई, तुलजापुर, हैदराबाद और गुहावटी में छात्र आन्दोलन कर रहे है। इन कैम्पसों में एससी, एसटी, ओबीसी के छात्रों को पोस्ट मैट्रिक स्कॉलरशिप मिलती थी, जिसके चलते एससी, एसटी के छात्रों की फीस 4500 रुपये सालाना थी। छात्रवृत्ति रोकने के कारण अब इनको 62,000 रुपये सालाना फीस चुकानी पड़ेगी। इसका मतलब है कि जिस छात्र के परिवार की मासिक आय 2 लाख रुपये है, वह छात्र भी अब इन संस्थानों में नहीं पढ़ पायेगा। ओबीसी के छात्रों की पोस्ट मैट्रिक स्कॉलरशिप रोकने के चलते ही नये दाखिले 2014-15 में 22 फीसदी,

2015-16 में 20 फीसदी और 2016-17 में 18 फीसदी घट गये। टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइन्स में 2013-14 से 2016-17 तक फीस में 45 फीसदी की बढ़ोत्तरी हुई। इसका अर्थ है कि आम घरों के लड़के और लड़कियों का रास्ता इस सरकार ने बन्द कर दिया।

जो छात्र और छात्राएँ सरकार की नीतियों का विरोध करते हैं उनको कैम्पस से बाहर निकाल दिया जाता है। हैदराबाद विश्वविद्यालय मे रोहित वेमुला की कहानी तो सभी जानते ही हैं। किस तरीके से सरकार ने उसकी संस्थानिक हत्या करायी। दरअसल चाहे पहले की सरकार हो या मौजूदा सरकार इनकी मंशा इस देश के निम्न और मध्यम तबके के लोगों को शिक्षा देने की न थी, न है। जाहिर है कि जितने अनपढ़ लोग रहेंगे इनको इस देश पर राज करने और पूँजीपतियों को लूट की खुली छूट देने में आसानी होगी।

अब पूँजीपतियों ने उच्च शिक्षा से मुनाफा निचोड़ने का मन बना लिया है। मध्य प्रदेश के सरकारी कॉलेजों में 7677 शिक्षकों के पद खाली हैं। मात्र 2638 शिक्षक स्थायी हैं और 5000 से ज्यादा शिक्षक गेस्ट लैक्चरर हैं। मिथिला के ललित नारायण विश्वविद्यालय में 1918 शिक्षकों के पद हैं, जिनमें से 488 पदों पर शिक्षक नियुक्त हैं और 1430 पद खाली हैं। यही हालत देश के तमाम विश्वविद्यालयों और कॉलेजों की है। उनमें पहले से ही शिक्षकों की कमी है। इसके चलते थोड़े से जो शिक्षक काम कर रहे होते हैं, उन पर काम का भारी दबाव होता है। दूसरी ओर कम शिक्षक रखकर पूँजीपति बाकी के शिक्षकों की सेलरी भी अपनी तिजोरी के हवाले कर देता है, हालाँकि कागजों पर ये संस्थान छात्र-शिक्षक का अनुपात मानदंडों के अनुरूप रखते हैं, जबकि जमीनी हकीकत कुछ और ही होती है। इन विश्वविद्यालयों और कॉलेजों में शिक्षकों के न होने के चलते जो छात्र पढ़ रहे हैं उनको कैसी शिक्षा मिल रही है? इसका हम सहज अनुमान लगा सकते हैं। होना तो यह चाहिए था कि इन खाली पदों को सरकार भरती, जिससे कुछ बेरोजगार नौजवानों को काम मिलता। लेकिन उलटे सरकार स्वायत्तता के नाम पर इन संस्थानों को बाजार के हवाले कर देना चाहती है। इस तरह इन विश्वविद्यालयों और कॉलेजों की हालत निजी संस्थानों जैसी ही हो जायेगी।

हम जानते हैं कि निजी विश्वविद्यालयों और कॉलेजों में नये शिक्षकों की नियुक्ति के बजाय पहले से ही कार्यरत शिक्षकों को भी कुछ न कुछ बहाना बनाकर बाहर का रास्ता दिखा दिया जाता है। जिन संस्थानों के लिए हमारे पुरखों ने जमीन दी, चन्दा इकठ्ठा किया और इन संस्थानों को खड़ा किया, आज उन संस्थानों को निजीकरण के तहत मुनाफे के लिए पूँजीपतियों के हवाले किया जा रहा है। सभी सरकारें इस नीति का खुला समर्थन करती हैं। निजीकरण के चलते विश्वविद्यालयों की फीस इतनी बढ़ती जा रही हैं कि निम्न और मध्यम वर्ग का छात्र वहाँ जाने के बारे में सोच भी नहीं सकता है। अब उन विश्वविद्यालयों में कौन पढ़ायेगा? क्या सिलैबस होगा? कितनी फीस होगी? ये सभी चीजें अब पूँजीपति तय करेंगे।

प्रेमचन्द्र ने कहा था "जिस देश में शिक्षा बाजार की वस्तु बन जाये उस देश का पतन निश्चित है।" आज हमारे देश की हालत ऐसी ही हो रही है। इस देश के युवाओं को अनपढ़ और बेरोजगार रखकर उनको हिन्दू-मुस्लिम के नाम पर, जाति के नाम पर दंगों में लड़वाया जा रहा है। क्या इस देश के नौजवानों को अनपढ़ रखकर भारत आगे बढ़ सकता है?

## हमारा राजा नंगा है!

**डेनमार्क के लेखक हंस क्रिस्चियन एंडर्सन की एक कहानी है, "सम्राट का नया परिधान"। इस कहानी में दो बुनकरों ने सम्राट के लिए नया परिधान बनाने का दावा किया। उनके अनुसार, यह परिधान उन लोगों को दिखायी नहीं देगा जो अयोग्य, बेवकूफ या अक्षम हैं, जबकि वास्तव में, उन्होंने कोई कपड़ा बनाया ही नहीं। इससे लोगों को विश्वास करना पड़ा कि कपड़ा उन्हें दिखाई नहीं दे रहा है क्योंकि कोई भी खुद को अयोग्य, बेवकूफ या अक्षम कहलाना पसन्द नहीं करता। सम्राट अपने "नये परिधान" में परेड करने निकला। वह बड़े शान से इठलाता हुआ चल रहा था लेकिन लोग डर के मारे यह नहीं कह पा रहे थे कि राजा नंगा है। अन्त में, एक बच्चा चिल्लाया, "अरे देखो, उसने कुछ भी नहीं पहन रखा है! हमारा राजा नंगा है!"**

# कोयला आवंटन घोटाला जारी है

**–अमरपाल**

कोयला और टू जी स्पेकट्रम घोटाले में कांग्रेस इतनी बदनाम हो गयी थी कि 2014 के लोकसभा चुनाव में उसे सत्ता से हाथ धोना पड़ा था। भाजपा के लिए चुनाव प्रचार करते समय मोदी ने कांग्रेस सरकार की खूब आलोचना की और वादा भी किया कि यदि वे सत्ता में आये तो भ्रष्टाचार के विरुद्ध सख्त कार्रवाई करेंगे। कांग्रेस चुनाव हार गयी और मोदी सरकार का गठन हुआ। ऑफिस सम्भालने के एक साल के भीतर ही मोदी सरकार ने कोयला खदान एक्ट 2015 पास कर दिया। इसमें विशेष प्रावधान जोड़ दिया कि अब बिना नीलामी के किसी भी कम्पनी को कोयला खदान आवंटित नहीं होगी। सरकार को बिना नीलामी के राज्य सरकार के उपक्रमों या निजी क्षेत्र की कम्पनियों को कोयला आवंटित करने का अधिकार है लेकिन सिवाय सरकारी कम्पनी के किसी भी कम्पनी को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से 26 फीसदी से ज्यादा हिस्सेदारी नहीं मिलेगी। इन सबके बावजूद सच्चाई यह है कि कोयला घोटाला दशकों से चल रहा है और आज भी जारी है। इस लेख के अधिकांश आँकड़े 'द कारवाँ' पत्रिका से लिये गये हैं जिसके लिए मैं उसका आभारी हूँ।

यह समझना जरूरी है कि किस तरह से कोयला घोटाले को अंजाम दिया जाता है? साल 1993 से 2011 के बीच 218 कोयला ब्लॉक की निजी और सरकारी कम्पनियों के बीच बिना नीलामी के बन्दरबाट कर दी गयी थी। यह आवंटन बिजली बनाने और भारी उद्योगों के लिए कोयला आपूर्ति के उद्देश्य से किया गया। इसमें 100 से ज्यादा निजी कम्पनियाँ और कुछ सरकारी कम्पनियाँ शामिल थीं। इससे भारत सरकार को कुल 10.7 लाख करोड़ का चूना लगा। इसमें ज्यादातर कम्पनियाँ बड़े नेताओं के नजदीकियों या रिशतेदारों की हैं। जिन सरकारी कम्पनियों को कोयला ब्लॉक दिया गया, वे भी निजी कम्पनियों के साथ संयुक्त उद्यम के तहत उन्हीं से कोयला की निकासी कराती हैं। जो कम्पनियाँ इस घोटाले में शामिल थीं, उन्हें आज भी नियम कानून में फेरबदल करके कोयला ब्लॉक आवंटित किया जा रहा है। यह घोटाला अभी रुका नहीं है। बदबूदार नाले की तरह बहता जा रहा है।

आइये देखें कि इसमें कौन-कौन सी कम्पनी शामिल हैं? इस घोटाले में निजी क्षेत्र से टाटा ग्रुप की कम्पनियाँ, जिन्दल स्टील एंड पावर लिमिटेड, इलेक्ट्रो स्टील कास्टिंग्स लिमिटेड, अनिल अग्रवाल ग्रुप फर्म्स, दिल्ली की भूषण पावर ऐंड स्टील लिमिटेड, जायसवाल नेको, आदित्य बिड़ला ग्रुप कम्पनीज, एस्सार ग्रुप पावर वेंचर्स, अडानी ग्रुप, आर्सेलर मित्तल इंडिया, लैंको ग्रुप जैसे बड़े समूह शामिल हैं और कुछ सरकारी कम्पनियाँ भी हैं। कोर्ट ने 2014 के निर्णय में केन्द्र सरकार द्वारा चलायी जा रही चार कम्पनियों को छोड़कर जिनमें कोई निजी भागीदार नहीं है, सभी आवंटित कोयला ब्लॉकों को गैरकानूनी बताया था। कोर्ट ने यह भी कहा कि राज्य सरकार के अधीन कम्पनियाँ आवंटित कोयला ब्लॉकों को निजी हाथों में दे देती हैं जो कोयले के राष्ट्रीयकरण की नीति के विरुद्ध है।

नियंत्रक और महालेखा परीक्षक (कैग) ने कई खुलासे किये हैं। कैग ने गुजरात स्टेट पेट्रोलियम कार्पोरेशन पर आरोप लगाया है कि उसने अडानी एनर्जी के साथ मिलकर प्राकृतिक गैस को महँगा खरीदकर अडानी एनर्जी को सस्ते में बेचा। इससे सरकार को 70 करोड़ का घाटा हुआ। अडानी पावर और गुजरात ऊर्जा विकास निगम लिमिटेड के बीच जो समझौता हुआ, उसमें अडानी पावर ने समझौते के हिसाब से बिजली की आपूर्ति नहीं की, जितनी पेनल्टी तय थी उसका महज एक तिहाई आर्थिक दंड लगाया गया। इससे सरकार को 80 करोड़ का घाटा हुआ। इसी तरह अडानी एंटरप्राइजिज लिमिटेड अन्तर्राष्ट्रीय बन्दरगाह ने केरल के कई सारे सरकारी विभागों से मिलकर रियायतों में परिवर्तन और समझौते की समय सीमा को बढ़ाया और सरकार को 29,217 करोड़ का चूना लगाया। अडानी पोर्ट्स और सेज, मुँदरा पोर्ट और सेज तथा गुजरात मैरिटाइम बोर्ड के मामले में बिना आवश्यक समझौते के ही बन्दरगाह की सीमाओं का विस्तार करके सरकार का 118 करोड़ का नुकसान किया गया। ये सभी आरोप कैग ने लगाये हैं। कर्नाटक लोकायुक्त ने आरोप लगाया है कि अडानी एंटरप्राइजिज लिमिटेड, बेलेकेरी बन्दरगाह (साथ में चार गैर अडानी कम्पनी भी) ने कर्नाटक के कई सरकारी विभागों से मिलकर खनिजों की गैरकानूनी खुदाई की है। इससे सरकार को 12,228 करोड़ का नुकसान उठाना पड़ा। अडानी की अन्य कम्पनियों पर इसी तरह के आरोप राजस्व खुफिया निदेशालय और गोवा पर्यावरण नियंत्रण बोर्ड ने भी लगाये हैं।

अडानी समूह के खिलाफ टैक्स में धाँधली, कालेधन को सफेद बनाने, रिश्वत देने और पर्यावरण को नुकसान पहुँचने जैसे गम्भीर अपराध दर्ज हैं। फिर भी यह समूह किसी बड़ी जाँच एजेंसी से खुद को बचाये रखने में कामयाब है। भारत सरकार इस समूह पर आँख मूँदकर भरोसा करती है। इस समय सरकारी बैंकों ने 1. 1 लाख करोड़ रुपये का कर्ज इस समूह को दे रखा है। इतना ही कर्ज लेने वाले कुछ दूसरे समूह भी हैं।

घोटाला रोकने का कानून बहुत कठोर है फिर अब तक घोटाला कैसे जारी है? कहा जाता है कि हर कानून के कुछ छल-छिद्र होते हैं। घोटालेबाज इन्हीं का फायदा उठाते हैं और व्यवस्था को चूना लगाते हैं। इस घोटाले में सबसे ज्यादा मलाई लूटने वाली कम्पनी है- अडानी एंटरप्राइजिज लिमेटेड (एईएल)। राजस्थान सरकार की कम्पनी "राजस्थान राज्य विद्युत उत्पादन निगम लिमिटेड" (आरआरवीयूएनएल) को जून 2007 में छत्तीसगढ़ में "परसा ईस्ट और कांटा बसन" की कोयला खान आवंटित की गयी। उसी साल इस सरकारी कम्पनी ने "अडानी माइनिंग प्राइवेट लिमिटेड" के साथ "परसा-कांटा कोइलरी लिमिटेड" (पीकेसीएल) नाम से साझा उद्यम खोल लिया। इसमें अडानी का 76 फीसदी और आरआरवीयूएनएल का महज 24 फीसदी मालिकाना हक था। 2014 के कोर्ट के निर्णय के बाद आरआरवीयूएनएल ने दोबारा से कोयले की खदान के लिए आवेदन किया और 30 साल के लिए उसे परसा ईस्ट और कांटा बसन का कोयला आवंटित कर दिया गया। 2015 में आरआरवीयूएनएल की साझेदार कम्पनी "अडानी माइनिंग प्राइवेट लिमिटेड" को "अडानी एंटरप्राइसिस लिमिटेड" (एईएल) ने अधिग्रहण कर लिया। इस एईएल ने वित्तीय वर्ष 2016-17 की वार्षिक रिपोर्ट में दावा किया है कि आरआरवीयूएनएल ने हमारे साथ साझेदारी को ज्यों का त्यों बना रखा है।

परसा ईस्ट और कांटा बसन, छत्तीसगढ़ की राजधानी रायपुर से लगभग 300 किलोमीटर उत्तरपूर्व में हसदेव अरंड के जंगलों के उत्तर में हैं। यह ब्लॉक 5 वर्ग किमी के आकार में है। पर्यावरण मंत्रालय के हिसाब से इन ब्लॉक में 225 मीटर की गहराई तक ही 4 अरब 50 करोड़ टन कोयला खुदाई योग्य है। माइनिंग कम्पनियाँ इसके लिए लार क्यों टपकाती हैं इसकी वजह है कि यहाँ केवल मिट्टी की ऊपरी परत और जंगलों को साफ करके सीधे उत्पादन शुरू हो जाता है। बहुत ज्यादा निवेश नहीं है। सिर्फ कमाई ही कमाई है। इस तरह यह ब्लॉक बहुत ही फायदेमन्द है। लोकसभा चुनाव 2014 में नरेंद्र मोदी ने ठीक ही कहा था कि "छत्तीसगढ़ वालो, आपके पास कोयला नहीं, हीरा है हीरा"। पर यह नहीं बताया कि वह हीरा अडानी समूह के लिए है।

भारत के "जंगल सर्वे 2011" के अनुसार हसदेव अरंड के जंगल को मध्य भारत के उन जंगलों में शामिल किया गया था जिन्हें काटना सख्त मना है। इसके अलावा इन जंगलों में विभिन्न आदिवासी समुदाय भी रहते हैं, जिनकी जीविका इसी जंगल से चलती है। वे जंगल को अपना देव मानते हैं। जंगल के अस्तित्व से उनका अस्तित्व जुड़ा हुआ है। जंगल अधिकार अधिनियम 2006 के तहत आदिवासी जंगल के ऊपर अपने अधिकार का दावा भी कर सकते हैं। दूसरी बात यह कि हसदेव अरंड जंगल जैव विविधिता और पारिस्थितिक रूप से बेहद संवेदनशील क्षेत्र है। छत्तीसगढ़ सरकार ने 2007 में ही हाथियों के लिए रिजर्व खोलने की योजना बनायी थी। केन्द्र सरकार ने प्रस्ताव पारित भी कर दिया था। फिर पता नहीं किन कारणों से यह नहीं बना। लेकिन पर्यावरण मंत्रालय ने 2010 में हसदेव अरंड के काफी बड़े हिस्से को खुदाई के लिए "प्रवेश वर्जित" क्षेत्र घोषित कर दिया था। लेकिन 2012 में इस क्षेत्र से यह तमगा छीन लिया गया। धरती के सीने में घाव करके मुनाफा बटोरने वाली कम्पनियों ने शाम-दाम-दंड-भेद अपनाकर कोयले के उत्पादन का रास्ता साफ कर लिया।

सरकारी कम्पनी खुद घाटा झेलकर एईएल को फायदा पहुँचा रही है। पीकेसीएल तो एईएल को समर्पित था ही, आरआरवीयूएनएल ने एईएल के साथ दो नये ब्लॉक परसा और कांटे एक्सटैन्शन से कोयला निकालने के लिए एक और साझा उद्यम शुरू किया-- राजस्थान कोइलरिज लिमिटेड। ये कोयला ब्लॉक भी परसा ईस्ट और कांटा बसन से बिलकुल सटे हुए हैं। इसमें भी एईएल की साझेदारी 74 फीसदी और आरआरवीयूएनएल की 26 फीसदी है। जल्दी ही इस ब्लॉक में उत्पादन शुरू होने वाला है। सुप्रीम कोर्ट के आदेश के बाद परसा ईस्ट और कांटे बसन को आरआरवीयूएनएल को आवंटित किया गया था। पहले यह ब्लॉक आवंटन छत्तीसगढ़ सरकार की एक कम्पनी "छत्तीसगढ़ स्टेट पावर जेनरेशन लिमिटेड" (सीएसपीजेएल) को हुआ था। जिसने अडानी माइनिंग के साथ संयुक्त उद्यम बनाकर खुद को 1549 करोड़ का चूना लगवाया था और अडानी को फायदा पहुँचाया था। सबसे मजेदार बात यह है कि छत्तीसगढ़ में 2003 से ही भाजपा की सरकार रही है। लोकसभा चुनाव में अडानी ने पानी की तरह पैसा क्यों बहाया था, स्पष्ट है। सुप्रीम कोर्ट ने यह ब्लॉक छत्तीसगढ़ सरकार से छीनकर इसीलिए आरआरवीयूएनएल को दिया था कि जिससे अडानी माइनिंग की धाँधली बन्द हो। लेकिन आरआरवीयूएनएल 2007 से ही एईएल के साथ कारोबार में लिप्त थी। मतलब कागजी हेर-फेर तो खूब हुआ पर जमीनी हकीकत ज्यों की त्यों बनी रही।

## एईएल के मुनाफे का राज

कोयले के अन्दर ग्रेड व्यवस्था है। जहाँ ग्रेड 1 से लेकर ग्रेड 17 तक इसे बाँटा गया है। परसा ईस्ट और कांटा बसन से ग्रेड 11 का कोयला खोदा जाता है। आरआरवीयूएनएल इस कोयले के

लिए पीकेसीएल को ग्रेड 9 के दाम देती है। ग्रेड 11 से ग्रेड 9 में बदलने के लिए एक प्रक्रिया अपनाई जाती है-- बेनीफिसिएशन। जिसके तहत कोयले से दूसरे पदार्थों को अलग कर दिया जाता है। इस प्रक्रिया को आरआरवीयूएनएल खुद करता है। यानी उल्टा पीकेसीएल आरआरवीयूएनएल से बेनीफिसिएशन की रकम वसूलती है। आरआरवीयूएनएल पीकेसीएल को 2267 रुपये प्रति टन का भुगतान करती है। इसमें बेनीफिसिएशन, अन्य कर और रोयल्टीज शामिल हैं।

वहीं सरकारी कम्पनी कोल इंडिया लिमिटेड की सहायक कम्पनी साउथ ईस्टर्न कोलफील्ड्स लिमिटेड (एसईसीएल) छत्तीसगढ़ में कोयले की खुदाई करती है। इस कम्पनी के ग्रेड 9 के कोयले की कीमत सभी कर और रोयल्टीज को मिलाकर 1992.96 रुपये प्रति टन है। छत्तीसगढ़ में इस सरकारी कम्पनी की 50 कोयले की खान हैं। अगर आरआरवीयूएनएल चाहे तो कोयला पीकेसीएल के बजाय एसईसीएल से खरीद सकती है। कोयले की ढुलाई का दोनों से लगभग बराबर खर्च आयेगा। अब प्रति टन 274.16 रुपये आरआरवीयूएनएल अतिरिक्त देती है। एईएल के मुताबिक उसने वित्तीय वर्ष 2016-17 में 73 लाख टन कोयले की आपूर्ति की। इस तरह एईएल को 200.9 करोड़ अतिरिक्त रुपये दिये गये। यह समझौता 30 साल का है। यानी 6029 करोड़ रुपये आरआरवीयूएनएल एक निजी कम्पनी को अतिरिक्त देगी।

जब से एईएल ने अडानी माइनिंग को अपने अधीन किया है, तब से उसे परसा ईस्ट और कांटा बसन से निकले अस्वीकृत कोयले को बेचने की भी अनुमति मिल गयी है। एईएल की 2016-17 की वित्तीय रिपोर्ट के अनुसार उसने 82.7 लाख टन कोयला खोदा और धुलकर 74.1 लाख टन की आपूर्ति की। यानी 8 लाख 60 हजार टन अस्वीकृत कोयला बेचा गया। 2016 में एसईसीएल के अस्वीकृत कोयले की कीमत 470 रुपये प्रति टन थी तो इसी हिसाब से एईएल को कम से कम 40.42 करोड़ रुपये का शुद्ध अतिरिक्त मुनाफा हुआ। मतलब 30 साल में 1212.6 करोड़ रुपया। 8 लाख 60 हजार टन अस्वीकृत कोयला तो कम्पनी ने अपनी बैलेन्स शीट में दिखाया है। असली मुनाफे का अन्दाजा लगाना मुश्किल है।

सितम्बर 2016 में आरआरवीयूएनएल ने कोयले के उत्पादन को दोगुना करने की अर्जी लगायी थी। आरआरवीयूएनएल किसके हितों के लिए काम कर रही है यह समझना मुश्किल नहीं है। पीकेसीएल और आरआरवीयूएनएल दोनों ने समझौते और कोयले की खरीद को लेकर पूछी गयी आरटीआई के सवालों का जवाब नहीं दिया है।

2014 में सुप्रीम कोर्ट का संदेश तो काफी हद तक साफ था कि कानून तय करें और उल्लंघन कर्ताओं पर मुकदमा चलाया जाये। लेकिन जब कोई चहेता फँसने लगे तो सरकारें दोहरे मापदंड अपनाने लगती हैं। यही मामला मोदी और अडानी का है। जब सइयाँ भये कोतवाल तो डर काहे का। सुप्रीम कोर्ट के आदेश को अडानी समूह कोई तवज्जो नहीं देता। जब तक सरकार और पूँजीपतियों की रंगरेलियाँ चलेंगी तब तक सार्वजनिक हितों को कुचला जाता रहेगा। जो इसका विरोध करे उसके लिए तमगा है- विकास विरोधी, देशद्रोही।

## कोबरापोस्ट का खुलासा

कोबरापोस्ट ने 'ऑपरेशन 136' नाम से एक स्टिंग ऑपरेशन में खुलासा किया है कि पैसों के लिए देश का मीडिया सत्ताधारी वर्ग के लिए चुनावी हवा तैयार करने, विपक्षी दलों के बड़े नेताओं का चरित्र हनन करने और दंगे का माहौल बनाने में लिप्त रहा है। इस स्टिंग ऑपरेशन से यह सामने आया है कि 17 मीडिया संस्थानों के सेल्स प्रमुखों ने हिन्दूवादी एजेंडा आगे बढ़ाने वाली रिपोर्टें छापने को तैयार हो गये थे।

ये कैसा खौफ है रक्श-ए-हुनर खामोश रहता है,
परिंदे चहचहाते हैं शजर खामोश रहता है।
खिलाफ-ए-जुल्म इक कमजोर सी आवाज तो होगी,
वो मुजरिम कम नहीं कोई अगर खामोश रहता है।

**--मनाजिर हसन 'शाहीन'**

इंसाफ का तराजू जो हाथ में उठाये
जुर्मों को ठीक तोले
ऐसा न हो कि कल का इतिहासकार बोले
मुजरिम से भी ज्यादा
मुंसिफ ने जुल्म ढाया
की पेश उस के आगे गम की गवाहियाँ भी
रक्खी नजर के आगे दिल की तबाहियाँ भी
उस को यकीं न आया
इंसाफ कर न पाया
और अपने उस अमल से
बदकार मुजरिमों के नापाक हौसलों को
कुछ और भी बढ़ाया
इंसाफ का तराजू जो हाथ में उठाते
ये बात याद रक्खे
सब मुंसिफों से ऊपर

**--साहिर लुधियानवी**

# नास्तिकता की अनिवार्यता

**--पी बी शेली**

**(इस लेख का प्रकाशन मार्च, 1811 में हुआ था। शेली उस समय आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में अध्ययनरत थे। इसमें ईश्वर के अस्तित्व पर प्रश्नचिन्ह ही नहीं लगाया है बल्कि उसकी सत्ता को नकारा गया है। विश्वविद्यालय के अधिकारियों ने इस 'खतरनाक रुझान' के प्रचार के आरोप में शेली को विश्वविद्यालय से निष्कासित कर दिया था। ध्यान देने योग्य बात यह भी है कि उस समय वहाँ औद्योगिक क्रान्ति अपना कदम बढ़ा चुकी थी। शेली मजदूरों में ज्यादा लोकप्रिय थे। एंगेल्स ने लिखा है कि 'कोई भी "प्रतिष्ठित" व्यक्ति खौफनाक बदनामी मोल लिये बिना शेली की कृतियों को अपनी मेज पर नहीं रख सकता था।'**

**आज विज्ञान इतना समुन्नत हो चुका है कि उसने अंधविश्वासों की जमीन को हिला दिया है। फिर भी दिन-प्रतिदिन नये-नये भगवान पैदा हो रहे हैं और लोगों को ये पूँजीवादी भगवान नियतिवाद के जाल में फँसाये रखना चाहते हैं। ऐसे समय में मनुष्य के विवेकसम्मत स्वतंत्र चिन्तन के विकास को प्रोत्साहित करने तथा सड़ी-गली मान्यताओं और अंधविश्वासों पर प्रहार करने में यह लेख आज भी प्रासंगिक है। --अनुवादक)**

किसी भी सिद्धान्त के पक्ष में दिये गये प्रमाणों की वैधता का सूक्ष्म निरीक्षण ही उसकी सत्यता परखने का एकमात्र रास्ता है और इस तरीके की उपयोगिता के बारे में कोई टीका-टिप्पणी करना अनावश्यक होगा। ईश्वर के अस्तित्व के बारे में हमारा ज्ञान एक ऐसा महत्त्वपूर्ण विषय है जिसकी जाँच उतनी सूक्ष्मता से की ही नहीं जा सकती। इस दृढ़ धारणा के बावजूद हम संक्षेप में प्रस्तुत प्रमाणों को निष्पक्ष भाव से कसौटी पर कसने के लिये अग्रसर होते हैं। इसके लिए सबसे पहले ईश्वर में विश्वास की प्रकृति को समझना आवश्यक है।

जब मनुष्य की बुद्धि का किसी सिद्धान्त से साक्षात्कार होता है तो उसे उसमें व्यक्त विचारों से सहमति या असहमति का अनुभव होता है। उनकी सहमति के बोध को ही विश्वास की संज्ञा दी जाती है। किन्तु उसके इस बोध के प्रत्यक्षीकरण में अनेक रुकावटें आती हैं जिन्हें दूर करने के लिए उसकी बुद्धि प्रयत्नशील रहती है ताकि उसके इस बोध का स्वरूप स्पष्ट हो जाये। बोध स्वयं निष्क्रिय होता है किन्तु इसे पूर्णता प्रदान करने के लिए बुद्धि अपने अन्वेषण में सक्रिय रहती है। अन्वेषण और बोध की इस उलझावपूर्ण स्थिति ने अधिकांश लोगों को इस कदर गलत ढंग से प्रभावित किया है कि वे यह सोचने लगते हैं कि बुद्धि विश्वास के प्रति सचेत है कि विश्वास उसके संकल्प का ही परिणाम है और फलस्वरूप यह बुद्धि द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है। इस गलती के अनुसरण और इसकी निरन्तरता से उन्होंने अविश्वास के साथ अपराध को जोड़ दिया है।

प्रत्येक मनोभाव की तरह विश्वास की तीव्रता आवेश की समानुपातिक होती है।

आवेश की तीन श्रेणियाँ हैं--

मस्तिष्क के पूर्ण ज्ञान का स्रोत इन्द्रियाँ हैं। फलस्वरूप इनके द्वारा प्रस्तुत प्रमाण का आधार ठोस होता है।

इन स्रोतों से प्राप्त निजी अनुभवों के आधार पर बुद्धि का निर्णय तीसरी श्रेणी में आता है।

दूसरों की अनुभूतियाँ निम्न श्रेणी के अन्तर्गत आती हैं।

फलस्वरूप अयुक्तिपूर्ण कोई प्रमाण टिकता नहीं है और युक्ति का सीधा सम्बन्ध इन्द्रियों के बोध से है।

प्रत्येक प्रस्तुत प्रमाण को उपर्युक्त इन तीनों श्रेणियों में से किसी के सन्दर्भ में परखा जा सकता है। हमें अब यह देखना है कि ईश्वर के अस्तित्व के सम्बन्ध में हमें आश्वस्त करने के लिए इन तीनों से क्या तर्क निकलते हैं।

पहला, इन्द्रिय-बोध का प्रमाण-- यदि ईश्वर हमें दर्शन दे या यदि वह अपने होने के बारे में हमारी इन्द्रियों को बोध करा दे तो निश्चित रूप से उसका यह आचरण विश्वास को सुदृढ़ करेगा। इस प्रकार जिन्होंने ईश्वर का साक्षात दर्शन किया है, उन्हें उसके होने के बारे में सबसे अधिक दृढ़ विश्वास होगा।

तर्क को दूसरा स्थान प्राप्त है-- यह कहा जाता है कि मनुष्य को मालूम है कि जो कुछ है उसका या तो कोई उद्गम-स्थल होगा या वह शाश्वत ढंग से चला आ रहा होगा। वह यह भी जानता है कि जा शाश्वत नहीं है, उसकी उत्पत्ति के पीछे निश्चित रूप से कोई कारण होगा। जब इस नियम को इस ब्रह्माण्ड के अस्तित्व के बारे में लागू किया जाता है तो यह आवश्यक हो जाता है कि यह प्रमाणित किया जाये कि इसकी रचना की गयी थी। जब तक यह स्पष्टतः समझा नहीं दिया जाता, तब तक हमें यही मान लेना होगा कि यह शुरू से ऐसा ही है। इस प्रकार जब किसी विषय को लेकर दो सिद्धान्त दो विपरीत ध्रुवान्तों पर हों, तो बुद्धि उसी पर विश्वास करती है जो आसान और कम अबोध होता है। 'ब्रह्माण्ड की रचना की गयी है' की अपेक्षा 'यह चिरन्तन है' मान लेना अधिक आसान है। बुद्धि की यह सहमति क्या कठिन समस्या के असहनीय भार को कम कर देना नहीं है? मनुष्य के उसके होने के बोध के बारे में दूसरा तर्क इस प्रकार है... मनुष्य केवल वर्तमान में अपने होने के बारे में ही नहीं जानता, बल्कि उसे उस समय की भी जानकारी होती है जब वह अस्तित्व में नहीं रहा होगा। फलतः इसके पीछे कोई कारण अवश्य रहा होगा... किन्तु इससे क्या प्रमाणित होता है? हम केवल परिणामों के पर्याप्त कारण और प्रभाव से अनुमान भर लगा सकते हैं... किन्तु निश्चित ही कोई उत्पादक शक्ति है जो यंत्र विशेष द्वारा नियंत्रित है। हम यह प्रमाणित नहीं कर सकते कि यह शक्ति उन यंत्रों में अन्तर्निहित होती है और न कोई ऐसी विपरीत अभिधारणा ही है जो इसे प्रयोग द्वारा प्रदर्शित कर सके। हम यह मान लेते हैं कि उत्पादक शक्ति समझ से परे है। किन्तु यह भी मान लेना कि यह शाश्वत, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान ईश्वर द्वारा प्रदत्त है, केवल अन्धकार में भटकने के लिए छोड़ देता है, साथ ही इसे और दुर्बोध बना देता है।

तीसरी और अन्तिम श्रेणी का प्रमुख आधार प्रमाण है-- यह अपेक्षित है कि इसे अयुक्तिपूर्ण नहीं होना चाहिए। यह तर्क कि ईश्वर मनुष्यों की इन्द्रियों को अपने होने का बोध करा देता है, हम लोगों द्वारा केवल माना जाता है। यदि हमारी बुद्धि इसे ठीक नहीं मानती कि ईश्वर अपने प्रत्यक्ष दर्शन के बजाय इन मनुष्यों को धोखे में रखेगा... हमारी युक्ति उन मनुष्यों की इस बात को कतई स्वीकार नहीं करती जो यह कहते हैं कि वे ईश्वर के चमत्कारों के साक्षी रहे हैं। बल्कि वह ईश्वर ही अविवेकी था, क्योंकि उसने यह निर्देश दिया कि उसका विश्वास किया जाना चाहिए कि उसने विश्वासी और भक्तों को पुरस्कृत करने का प्रस्ताव किया और उन लोगों के लिए कठोर दण्ड की व्यवस्था जो उस पर अविश्वास करते हैं, उस पर अँगुली उठाते हैं... हम केवल स्वेच्छा से किये गये कार्यों को ही मानते हैं। विश्वास इच्छा-शक्ति का परिणाम नहीं है। बुद्धि स्वयं में निष्क्रिय रहती है। इससे यही प्रमाणित होता है कि हमारे पास पर्याप्त सुबूत नहीं है या यों कहें कि जो सुबूत हैं भी, वे ईश्वर के अस्तित्व को प्रमाणित करने के लिए अपर्याप्त हैं और हमने पहले ही यह दिखा दिया है कि इसे तर्कों के आधार पर भी प्रमाणित नहीं किया जा सकता... केवल वही ईश्वर में विश्वास कर सकते हैं जिन्होंने उसे प्रत्यक्षतः देखा है।

इससे स्पष्ट है कि किसी भी धारणा तक पहुँचने के लिए उपर्युक्त तीनों स्रोतों में से किसी के पास पर्याप्त सुबूत नहीं होने के कारण बुद्धि ईश्वर के अस्तित्व पर विश्वास नहीं कर सकती। यह भी स्पष्ट है कि चूँकि विश्वास एक आवेग है, इसलिए ईश्वर पर अविश्वास करनेवालों को अपराध-भाव के भय से त्रस्त नहीं किया जा सकता। जो लोग गलत माध्यम से किसी तत्त्व को देखते हैं और उस गलत माध्यम को हटाने की अवहेलना जान-बूझकर करते हैं वे निन्दा के पात्र हैं।

इस प्रकार के प्रमाणों की त्रुटियों का निरीक्षण करना इसलिए आवश्यक हो जाता है ताकि वे समाज के लिए हानिकारक न हों। सच्चाई ही मानव-समाज की भलाई को गति देती रही है... इस प्रकार प्रत्येक विचारशील व्यक्ति इससे अवश्य ही सहमत होगा कि ईश्वर के अस्तित्व के बारे में कोई प्रमाण नहीं है।

(यही सिद्ध करना था।)

**अनुवादक-- परशुराम**

---

## सड़ियल सामन्ती सोच के प्रचारक

**फ्रांसिसी क्रान्ति में सामन्तों को जिलेटिन से काटने के बाद भी नेपोलियन गद्दी पर बैठ गया था और ट्रेजडी के बाद कॉमेडी की तरह उसका भतीजा लुई बोनापार्ट भी। हमारे यहाँ तो क्रान्ति की जगह आधी रात का सन सैंतालिस भर ही हुआ था। सामन्तवाद की जड़ में मट्ठा नहीं पड़ा, इसीलिए ये धर्म ध्वजवाहक मध्यकाल का केरीकेचर करते फिरते हैं। भाजपा की जेब भले ही कॉर्पोरेट घराने भरते हों, लेकिन उसके पीछे सड़ियल सामन्ती सोच वाले लोग ही खड़े हैं। वे संविधान में लिखित "हम भारत के लोग" से दूर-दूर तक मेल नहीं खाते। उलटे उसमें लिखे धर्मनिरपेक्ष और जनतन्त्र जैसे शब्दों की खिल्ली उड़ाते हैं। यह सिर्फ बलात्कार और बलात्कारियों का निर्लज्ज समर्थन करने का मामला ही नहीं है, सभी जगहों पर इनकी सड़ी-गली सामन्ती सोच जनता को गुमराह करके उसका अहित कर रही है। सामाजिक जीवन का कोई भी पहलू उठा लीजिये, इनकी घटिया सोच सामने आएगी।**

# हमदर्दी

**--सीमा मुस्तफा**

पिछले साल दो नौजवानों ने फैसला किया कि वे एक महीने तक एक औसत गरीब भारतीय की आय पर गुजारा करेंगे। उनमें से एक का नाम तुषार है जो हरियाणा के एक पुलिस अधिकारी का बेटा है। उसने पेंसिलवेनिया विश्वविद्यालय से पढ़ाई की और तीन साल तक अमरीका और सिंगापुर में एक निवेश बैंकर के रूप में काम किया। दूसरे का नाम मैट है। वह बचपन में ही अपने माता-पिता के साथ अमरीका चला गया था। उसने एमआईटी से पढ़ाई की। इन दोनों ने अलग-अलग मौकों पर भारत लौटने का फैसला किया। दोनों बंगलुरू में यूआईडी प्रोजेक्ट में शामिल हुए, एक ही फ्लैट में रहने लगे और गहरे दोस्त बन गये।

यह विचार उनके दिमाग में अचानक आया था। दोनों इस धुँधली सी उम्मीद में भारत लौटे थे कि वे अपने देश के किसी काम आ सकेंगे। लेकिन वे देश के लोगों को बहुत कम जानते थे। एक शाम तुषार ने सलाह दी कि-- " हमें 'औसत आय' पर जीकर एक 'औसत भारतीय' को समझने की कोशिश करनी चाहिए।" उसका मित्र मैट तुरन्त ही इस विचार से अभिभूत हो गया। यहाँ से उन्होंने एक यात्रा शुरू की जो हमेशा के लिए उनका जीवन बदल देने वाला साबित हुआ।

शुरुआत करने के लिए भारतीय की औसत आय जानना जरूरी था। उन्होंने हिसाब लगाया कि भारत की मध्य राष्ट्रीय आय 4500 रुपये महीना या 150 रुपये प्रतिदिन है। दुनिया में लोग अपनी आमदनी का लगभग एक तिहाई घर के किराये पर खर्च करते हैं। इस किराये को छोड़कर उन्होंने प्रतिदिन 100 रुपये खर्च करने का फैसला किया। उन्होंने महसूस किया कि इतने पैसे में वे गरीब का नहीं, बल्कि औसत आदमी का जीवन जियेंगे। आखिर 75 प्रतिशत भारतीय इस औसत से कम पर ही जीवन जीते हैं।

अपने विचार से प्रेरित होकर दोनों नौजवान अपनी उस घरेलू नौकरानी के छोटे से घर में चले गये जिसे यह एक अजीब सी बात लगी। उनके जीवन में बदलाव यह हुआ कि दोनों ने अपने दिन का ज्यादातर हिस्सा खाने की योजना बनाने और उसका इंतजाम करने में खर्च किया। बाहर खाने का तो सवाल ही नहीं था। यहाँ तक कि ढाबे भी बहुत खर्चीले थे। दूध और दही बहुत महँगे थे इसलिए वे किफायत से खर्च करते थे। ब्रेड जैसी पहले से तैयार खाने की चीजें और मांस भी उनके बूते से बाहर था। न घी, न मक्खन, सिर्फ थोड़ा सा रिफाइन्ड तेल। दोनों ही जमकर खाने वाले उत्साही बावर्ची हैं। सोयाबीन की बड़ी के रूप में उन्हें चमत्कारी भोजन मिल गया-- प्रोटीन से भरपूर और कई तरीकों से पकाये जाने लायक, इसका खर्च भी ज्यादा नहीं था। फिर पारले जी का बिस्कुट सस्ता था--25 पैसे में 27 कैलोरी। उन्होंने खाने के बाद मीठे के रूप में बिस्कुट के ऊपर तले हुए केले की खोज की। यही उनकी हर दिन की दावत थी।

### वर्जित जीवन

100 रुपये रोज पर जीवन जीने से उनके जीवन का दायरा छोटा हो गया। उन्हें पता चला कि वे एक दिन में बस का किराया खर्च करके 5 किमी से ज्यादा की यात्रा नहीं कर सकते। अगर उन्हें इससे ज्यादा दूर जाना हो तो पैदल चलना पड़ेगा। वे एक दिन में केवल 5 या 6 घण्टे ही बिजली का खर्च वहन कर सकते थे, इसलिए बल्ब और पंखों का इस्तेमाल किफायत से करते थे। उन्हें अपने मोबाइल और कम्प्यूटर भी चार्ज करना जरूरी था। वे दुकानों के आगे से उन चीजों को ताकते हुए गुजर जाते जिन्हें वे खरीद नहीं सकते थे। वे सिनेमा देखने का खर्च नहीं उठा सकते थे और उम्मीद करते थे कि बीमार ना पड़ें।

फिर भी एक बड़ी चुनौती बाकी थी। क्या वे 32 रुपये रोजाना पर भी जी सकते हैं जो भारत की सरकारी गरीबी रेखा है और जो तभी से विवादों के घेरे में है जब भारत के योजना आयोग ने सर्वोच्च न्यायालय को बताया था कि यह शहरों की गरीबी रेखा है गाँव में यह और भी कम, प्रतिव्यक्ति 26 रुपये प्रतिदिन हैं?

### भयावह अनुभव

इस चुनौती का सामना करने के लिए उन्होंने केरल में मैट के पुश्तैनी गाँव करूकाचल जाने और वहाँ 26 रुपये रोज पर गुजारा करने का फैसला किया। वे उसना चावल, कन्द और केला खाते और काली चाय पीते। 18 रुपये रोजाना में जिसे कुछ समय के लिए अपनायी गयी उनकी गरीबी इजाजत देती थी, सन्तुलित खुराक असम्भव थी। उन्होंने देखा कि वे सारा दिन खाने के बारे

में ही सोचते रहते हैं। वे दूर-दूर तक पैदल ही जाते और यहाँ तक कि कपड़े धोने के लिए साबुन खरीदने में भी पैसे बचाते। वे मोबाइल का इन्टरनेट का खर्च वहन नहीं कर सकते थे। ऐसे में अगर वे बीमार पड़ गये होते तो कयामत आ जाती। 26 साल के इन दो नौजवानों के लिए 'सरकारी गरीबी' का अनुभव भयावह था।

जब दीपावली के दिन उनका प्रयोग पूरा हो गया तो उन्होंने अपने दोस्तों को लिखा-- काश हम तुम्हें बता पाते कि अपने 'सामान्य जीवन में वापस आकर हम कितने खुश हैं। काश हम कह पाते कि दो रात पहले की हमारी जश्न की शानदार दावत इतनी तृप्ति देने वाली थी जिसकी हम अपने पूरे प्रयोग के दौरान उम्मीद लगाये हुए थे। यह शायद हमारे जीवन का सबसे अच्छा खाना था, हमारे मेजबानों के बेपनाह प्रेम से भरपूर हालाँकि खाने का हर टुकड़ा इस भयावह सच्चाई की याद दिलाता कि हमारे देश के 40 करोड़ लोगों के लिए ऐसा खाना काफी दिनों से एक सपना है। कि हम तो अपने आरामदेह जीवन में वापस आ सकते हैं लेकिन उन्हें जिन्दा रहने की उसी जद्दोजहद में शामिल रहना है-- विकल्पों के अभाव और भारी बाधाओं से भरा कठिन जीवन। एक ऐसा जीवन जहाँ आजादी का कोई मायने नहीं और भूख की कोई कमी नहीं।

### सवालों की बहुतायत

जिन चीजों को अब हम फालतू मानने लगे हैं, उन पर पैसा खर्च करने में हमे परेशानी होती है। क्या हमें बालों में लगायी जाने वाली चीजों या किसी बेशकीमती इत्र की वास्तव में जरूरत है? क्या छुट्टी के दिन खुशी मनाने के लिए महँगे रेस्त्राओं में खाना जरूरी है? एक बड़े स्तर पर कहें तो क्या हम अपने इर्द-गिर्द मौजूदा विलासिता के लायक हैं? क्या यह केवल सौभाग्य की बात है कि हम ऐसे माहौल में पैदा हुए जहाँ हम आराम का जीवन जी सकते हैं? ऐसी कौन सी चीज है जो हमारे ही जैसे दूसरे लोगों के लिए इन चीजों में अधिकांश (जिन्हें हम जरूरी मानते हैं) के लायक नहीं समझती या, खासतौर पर अपने विकास के साधनों (शिक्षा) या अपनी रक्षा के साधनों (स्वास्थ्य सेवा) के लायक नहीं मानती?

हम इन सवालों के जवाब नहीं जानते, लेकिन हम उस अपराधबोध के एहसास को जानते हैं जो अब हमारे भीतर व्याप्त है। वह अपराध बोध जिसके साथ वह प्रेम और उदारता भी घुली-मिली है जो हमे दूसरे छोर पर रहने वाले लोगों से उनके कठोर जीवन के बावजूद हासिल हुआ। हमने भले ही उम्र भर उनसे अजनबियों जैसा बर्ताव किया हो, लेकिन उन्होंने निश्चित रूप से हमारे साथ उस तरह का बर्ताव नहीं किया।"

इस तरह इन दो दोस्तों ने गरीबी के साथ अपनी छोटी-सी मुठभेड़ से क्या सीखा? यही कि भूख आपके अन्दर गुस्सा पैदा कर सकती है। कि सबके लिए पौष्टिक आहार की गारन्टी करने वाला कानून अनिवार्य है। कि गरीबी आपको छोटे से छोटे सपने देखने की इजाजत नहीं देती। और सबसे बड़ी बात मैट के शब्दों में-- कि लोकतंत्र कायम रहे, इसके लिए हमदर्दी बेहद जरूरी है।

**अनुवाद-- प्रवीण कुमार**

# आत्महत्याओं के लिए ऊर्वर बनता देश

**--सनी तोमर**

सोनू ने फाँसी लगाकर अपनी जान दे दी। क्योंकी उसका पेपर खराब गया था।

नेहा, जिसकी शादी हुए अभी 5 महीने ही हुए थे उसने अपने ऊपर मिट्टी का तेल छिड़क कर आग लगा ली, क्योंकी उसके ससुराल वालों ने उसके साथ बहुत ज्यादा बदसलूकी की, उसका बहुत अपमान किया। जब उसने अपने घरवालों को ये सारी बातें बतायीं तो वहाँ भी उसकी मदद करने के बजाय उसे एडजस्ट करने के लिए कहा गया, जो वह नहीं कर पायी।

पंकज की लाश उसके खेत में एक पेड़ पर फंदे से झूलती हुई पायी गयी, जो पूरी रात वहा लटकती रही थी। बाद में पता चला कि वह बहुत समय से कर्जे की वजह से परेशान था। ढंग से खा-पी भी नहीं रहा था। सूदखोर रोज उसे और उसके घर वालों को परेशान कर रहे थे। उसे फाँसी के अलावा कोई राह नहीं सूझी।

आत्महत्या की ऐसी तमाम घटनाएँ हमारे आस-पास रोज घटती रहती हैं। हम रोज अखबारों में पढ़ते रहते हैं कि किसी ने किसी बात से तंग आकर आत्महत्या कर ली। थोड़ा दुखी होते हैं और फिर अपने काम काज में व्यस्त हो जाते हैं। लेकिन आत्महत्या के इन आँकड़ों पर अगर गौर करें तो दिल दहला देने वाली तस्वीर पेश आती है। नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो की एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में सन 2005 से 2015 के बीच कुल 1 लाख 20 हजार के औसत से हर साल आत्महत्याएँ हुई हैं। यानी 10 सालों में कुल लगभग 12 लाख लोगों ने आत्महत्याएँ की। इस आँकड़े को देखने के बाद यह सवाल आता है कि क्या इन 12 लाख लोगों के पास ऐसा कोई रास्ता नहीं था जो इनको जीने का कारण दे सके।

रिपोर्ट के अनुसार हर 55 मिनट में एक छात्र आत्महत्या करता है। सन 2016 में 9,474 छात्रों ने आत्महत्या की है। छात्रों की आत्महत्या के एक तिहाई मामलो में आत्महत्या का कारण परीक्षा में असफलता होना पाया गया है। कम अंक आने या परीक्षाओं में फेल हो जाने के चलते अपने आसपास के लोगों के भयानक अपमान को झेलने या अपने माँ-बाप की उन आँखों का सामना करने, जिनके सपनों का बोझ वह अपने कंधो पर ढोता है, से ज्यादा बेहतर उसे अपनी जान दे देना लगता है। रिपोर्ट बताती है कि राज्य

***शेष पेज 57 पर देखें***

# न्यायपालिका से जुड़े विवाद की पड़ताल

**--मोहित पुण्डिर**

12 जनवरी 2018 को सुप्रीम कोर्ट के 4 सबसे वरिष्ठ जजों ने एक प्रेसवार्ता की, जिसमें सुप्रीम कोर्ट की कार्यप्रणाली पर बेहद गम्भीर आरोप लगाये गये और साथ ही मुख्य न्यायधीश दीपक मिश्रा पर भी कई सवाल खड़े किये गये। जजों ने बताया कि बड़े राजनेताओं से जुड़े मामलों में सुनवाई के लिए मनमाने तरीके से बेंचों का आवंटन किया जा रहा है ताकि फैसलों को प्रभावित किया जा सके। यह देश के लोकतांत्रिक ढाँचे के खिलाफ है, अगर इसे रोका नहीं गया तो इसके परिणाम बेहद घातक होंगे। अक्सर न्यायिक मामलों में अवमानना के डर से बातों को छुपा लिया जाता है, लेकिन जजों द्वारा समस्या को इस तरह खुलकर लोगों के सामने रखना पर्दे के पीछे चल रहे राजनेताओं, नौकरशाहों और मीडिया के घिनौने गठजोड़ को उजागर करता है और इन मुद्दों पर बहस को जन्म देता है।

प्रेस कांफ्रेन्स में जस्टिस चेलामेश्वर (चीफ जस्टिस के बाद सुप्रीम कोर्ट के दूसरे सबसे वरिष्ठ जज) ने बताया कि वह दो महीने पहले पत्र के जरिये अपनी समस्या को मुख्य न्यायधीश के सामने रख चुके थे लेकिन उसकी अनदेखी कर दी गयी। जजों के बीच का यह विवाद एक मेडिकल कॉलेज घोटाले को लेकर है। दरअसल पिछले दिनों सरकार ने 46 मेडिकल कॉलेजों में दाखिले पर एक-दो साल के लिए रोक लगा दी थी क्योंकि इनमें मापदंडों के अनुसार सुविधाएँ नहीं थी। इन्हीं में से लखनऊ के एक मेडिकल कॉलेज पर से यह रोक हटाने को लेकर जजों और पत्रकारों तक पर बड़ी घूस लेने के आरोप लगे जिसमें ओड़ीसा हाईकोर्ट के पूर्व जज आईएम कुदिसी से लेकर सुप्रीम कोर्ट के बड़े जज तक शामिल थे। इस पूरे मामले में इंडिया टीवी के एक वरिष्ठ पत्रकार हेमंत शर्मा का नाम भी सामने आया। सीबीआई ने उन्हें हिरासत में भी लिया पर जल्दी ही छोड़ दिया, क्योंकि अमित शाह और प्रधानमंत्री मोदी से इनके करीबी रिश्ते भी बताये जाते हैं। यह पूरा खुलासा तब हुआ जब एक एनजीओ ने इस पर याचिका दायर की जिसके बाद यह मामला सुप्रीम कोर्ट में सुनवाई के लिए जस्टिस जे चेलमेश्वर और एस अब्दुल नजीर की बेंच के सामने आया। उन्होंने इस मामले की गम्भीरता को समझते हुए और इसमें बड़े राजनेताओं और जजों की संलिप्तता के चलते इसे पाँच जजों की संविधान पीठ के हवाले करने का आदेश दिया। इस केस में चीफ जस्टिस दीपक मिश्रा पर भी सवाल उठे थे और जस्टिस चेलमेश्वर का कहना था कि अगर मुजरिम खुद न्यायधीश की भूमिका में होगा तो न्याय का तो कोई सवाल ही नहीं बनता। लेकिन चीफ जस्टिस ने यह मानने से साफ इनकार कर दिया कि इस मामले की जाँच कोई अन्य संवैधानिक पीठ नहीं करेगी बल्कि उन्होंने अपने विशेषाधिकार का फायदा उठाकर इसे खारिज कर दिया। इससे परेशान चारों जजों ने लोगों के सामने समस्या को रखना सही समझा और प्रेसवार्ता में इन मामलों पर खुलकर बातें की।

यह एकमात्र मामला नहीं जब इस तरह से अपने विशेषाधिकारों का इस्तेमाल करके महत्त्वपूर्ण मामलों को चयनित बेंचों को सौंपा जा रहा है। जस्टिस लोया मामलें में भी यही नजर आया। इस केस की सुनवाई जस्टिस अरुण मिश्रा की अध्यक्षता वाली पीठ को सौंपी गयी जिसपर यह आरोप लगा कि मामले को प्रभावित करने के लिए ऐसा किया गया। याद रहे कि जस्टिस लोया की संदिग्ध हालत में उस समय मौत हो गयी थी जब वह सोहराबुद्दीन एनकाउंटर मामले की सुनवाई कर रहे थे जिसमें भाजपा अध्यक्ष अमित शाह समेत गुजरात पुलिस के कई आला अधिकारियों के नाम आये थे। इस घटना से भयग्रस्त लोया का परिवार लगभग तीन साल बाद अपनी चुप्पी तोड़ते हुए मौत पर सवाल खड़ा करता है और इन्ही सवालों को लेकर 'द कारवाँ पत्रिका' एक रिपोर्ट प्रकाशित करती है, जो मौत के बताये गये कारणों पर सवाल उठाती है और इस मामले में बड़े षड्यंत्र की ओर इशारा करती है। इस रिपोर्ट में उनके परिजनों की ओर से कई सवाल उठाये गये हैं, जैसे लोया की मौत के समय को लेकर कोई स्पष्टता नहीं है। पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट के अनुसार मृत्यु का समय 1 दिसम्बर 2014 को सुबह 6:15 बजे दर्ज है, जबकि परिजनों के मुताबिक उन्हें एक तारीख को सुबह 5 बजे फोन पर उनकी मृत्यु की सूचना दी गयी थी। पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट के हर पन्ने पर एक व्यक्ति के दस्तखत हैं, जिसके नीचे मृतक से सम्बन्ध मराठी में 'चचेरा भाई' लिखा है, लेकिन परिवार का कहना है कि परिवार में ऐसा कोई व्यक्ति है ही नहीं। और इस चचेरे भाई का आज तक कोई सुराग नहीं मिला।

लोया की मौत दिल के दौरे से होना बताया गया, जबकि परिजनों ने उनके कपड़ों पर खून के धब्बे देखे थे। लोया के पिता के अनुसार उनके सिर पर चोट भी थी। बताया गया था कि जज को ऑटो से हॉस्पिटल ले जाया गया, बल्कि रवि भवन से सबसे नजदीकी ऑटो स्टैंड की दूरी दो किलोमीटर है। ऐसे में आधी रात को ऑटो मिलना कैसे सम्भव हुआ? एक सवाल ईश्वर बहेटी नाम के आरएसएस कार्यकर्ता पर भी उठाया गया है। इसी कार्यकर्ता ने लोया की मौत के बाद पार्थिव शरीर को उनके पैतृक गाँव ले जाने की जानकारी परिजनों को दी, साथ ही लोया का फोन भी परिवार को बहेटी ने ही लगभग तीन दिन बाद लौटाया था, जिसका सारा डाटा डिलीट कर दिया गया था। आखिर जो काम पुलिस का था उसे एक आरएसएस का कार्यकर्ता क्यों कर रहा था? चौकाने वाली बात यह है कि रवि भवन नागपुर की हाई प्रोफाइल जगह है जहाँ बड़े अफसर और नेता ठहरते हैं और वहाँ इतनी बड़ी घटना हुई जिसमें एक जज की मौत हो गयी और उस वक्त वहाँ काम करने वाले किसी कर्मचारी को कानों कान कोई खबर नहीं लगी। यह तथ्य तब सामने आया जब कारवाँ पत्रिका की एक पत्रकार ने वहाँ के कर्मचारियों से बात की तो उन्होंने बताया की हमें इस खबर की जानकारी 2 साल बाद मीडिया से पता लगी। जज लोया का कमरा रिसेप्शन के बराबर में था ऐसी ही जानकारी नागपुर के बड़े अधिकारियों ने भी दी। उन्हें भी इस घटना की कोई जानकारी नहीं थी।

लोया के पिता और बहन ने बताया कि आरोपी के पक्ष में फैसला देने के लिए लोया पर बॉम्बे हाई कोर्ट के चीफ जस्टिस द्वारा दबाव बनाया जा रहा था, साथ ही 100 करोड़ रुपये और मुम्बई में फ्लैट और जमीन का ऑफर भी दिया गया था। इस मामलें में तीन अलग-अलग जज शामिल रहे। सुप्रीम कोर्ट ने यह साफ कहा था कि यह केस केवल एक जज के ही अधीन रहेगा। सबसे पहले उस जज का तबादला कर दिया गया जिसने अमित शाह का कोर्ट में उपस्थित न होने के लिए फटकार लगाया था। उसके बाद जज लोया के पास यह केस आया, उन्होंने अमित शाह को 15 दिसम्बर 2014 को उपस्थित होने के लिए कहा। पर उससे पहले ही अचानक उनकी मृत्यु हो गयी। उसके बाद तीसरा जज आया जिसने लगातार तीन सुनवाई के बाद अमित शाह को निर्दोष घोषित कर दिया और इसका फैसला उस दिन सुनाया गया जब पूरा मीडिया धोनी के संन्यास की खबर में लीन था। इस तरह एक बड़े मामले में बिना किसी को दोषी करार दिये सुनवाई पूरी कर दी गयी।

उपर्युक्त मामले में दोषी सत्ता पक्ष से थे, तो क्या इसी कारण जज लोया की मौत हुई? और जज लोया से अगले जज ने इतनी जल्दी फैसला कैसे सुना दिया और फैसले के खिलाफ सीबीआई ने कोई सवाल क्यों नहीं उठाया? ये ऐसे सवाल हैं जिनके जवाब अभी तक अनसुलझे हैं। इन सबके बावजूद 19 अप्रैल 2018 को उच्चतम न्यायालय ने जज लोया के मामले की जाँच कराने से जुड़ी याचिका को खारिज कर दिया। पिछले समय अनेक ऐसे तथ्य सामने आये हैं जो महज इत्तेफाक नजर नहीं आते, हाल ही में ऐसा ही मामला उत्तराखंड हाईकोर्ट के चीफ जस्टिस केएम जोसेफ की सुप्रीम कोर्ट में नियुक्ति को लेकर है। कॉलेजियम (जजों की नियुक्ति की प्रणाली) ने जस्टिस जोसेफ का नाम सुप्रीम कोर्ट में बतौर जज सुझाया था पर सरकार ने अभी तक इस मामले को लम्बित ही रखा हुआ है। इसका कारण जस्टिस जोसेफ का मोदी सरकार के खिलाफ पूर्व में दिये गये फैसलों को माना जा रहा है। इसी तरह से गोपाल सुब्रमण्यम की नियुक्ति के चलते भी मौजूदा केन्द्र सरकार पर कई सवाल उठ चुके हैं। इसका कारण उनका सोहराबुद्दीन फर्जी मुठभेड़ मामले से जुड़ा होना बताया जा रहा है जिसमें भाजपा अध्यक्ष अमित शाह मुख्य आरोपी थे। सोहराबुद्दीन मामले में अमित शाह के वकील रहे जज यूयू ललित को सुप्रीम कोर्ट का जज नियुक्त कर दिया गया जबकि कॉलेजियम ने सुब्रमण्यम का नाम सुझाया था।

सरकार अपने पक्ष के जजों को ही सुप्रीम कोर्ट में नियुक्त करना चाहती है। पिछले सालों में कॉलेजियम द्वारा सुझाये गये 77 जजों के नाम में से केन्द्र सरकार ने केवल 34 को ही मंजूरी दी। इतने सुझावों को एक साथ नामंजूर करना एक अभूतपूर्व घटना है। जजों की नियुक्तियों को लेकर सरकार कॉलेजियम को अपने रास्ते का रोड़ा मान रही है जिसके चलते वह इसे खत्म करने की असफल कोशिश भी कर चुकी है। क्या जजों की स्वतंत्रता पर निकट भविष्य में कोई संकट के बादल मंडरा रहे हैं? अगर ऐसा होता है तो पूरी न्यायिक प्रक्रिया केवल कुछ मुट्ठी भर सत्ताधारियों के हाथों की कठपुतली बनकर रह जायेगी और जिसके परिणाम बेहद खतरनाक होंगे। पिछले दिनों राजस्थान सरकार ने एक विधेयक लाने की कोशिश की जिसमें किसी भी राजनेता पर मुकदमा चलाने से पहले सरकार की इजाजत अनिवार्य होगी और अगर कोई पत्रकार उस राजनेता से जुड़ी कोई खबर छापता है तो उसे दो साल तक की जेल भी होगी। भारी विरोध के चलते यह बिल तो पास नहीं हुआ पर सरकार की मंशा साफ हो गयी।

सुप्रीम कोर्ट में अपनी पसन्द के जजों को बैठाना साफ संकेत देता है कि मौजूदा केन्द्र सरकार देश की संवैधानिक संस्थाओं पर अपना कब्जा जमाने को आतुर है। न्याय-व्यवस्था की स्वतंत्रता लोकतंत्र के लिए एक आवश्यक शर्त है, लेकिन सत्ता में काबिज सरकार लोकतंत्र का खात्मा करने पर उतारू है, जिसमें उच्च पद पर आसीन कुछ नौकरशाहों का भी पूरा योगदान है। आज सरकार के चेहरे का नकाब उतर चुका है। देश की जनता अगर एकजुट होकर संघर्ष नहीं करती, तो देश के लोकतांत्रिक ढाँचे को बचाये रखना सम्भव नहीं है।

रिपोर्ट

# एसएससी में व्याप्त भ्रष्टाचार विरोधी आन्दोलन एक सहभागी का अनुभव

**--विशाल**

भारत सरकार के विभिन्न विभागों में सरकारी नौकरी के लिए होने वाली एसएससी परीक्षा में धाँधली के विरोध में 27 फरवरी को एक आन्दोलन शुरू हुआ। इस आन्दोलन की शुरुआत नयी दिल्ली एसएससी मुख्यालय पर हुई। यह बिना किसी पूर्व योजना के सोशल मीडिया के जरिये खड़ा हुआ और इसके सभी आन्दोलनकारी, आन्दोलनस्थल पर आकर ही पहली बार एक-दूसरे से परिचित हुए। यह आन्दोलन न तो किसी खास विचारधारा के तहत खड़ा हुआ और न ही किसी संगठन द्वारा खड़ा किया गया। आन्दोलनकारी प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी करने वाले 18 से 30 वर्ष की उम्र के छात्र थे। इनकी माँग केवल यह है कि सरकारी नौकरी के लिए आयोजित परीक्षाओं में चल रही धाँधली बन्द हो। लेकिन सरकार यह माँग मानने को तैयार नहीं है। चूँकि यह एक असंगठित और सोशल मीडिया के जरिये खड़ा किया गया आन्दोलन था इसलिए इसकी अपनी खूबियाँ व कमियाँ थीं। मैं इन दिनों इस आन्दोलन का हिस्सा बना।

मैं इस आन्दोलन में 5 मार्च 2018 यानी आन्दोलन शुरू होने के सातवें दिन शामिल हुआ। पहले दिन जब मैं धरनास्थल पर आया तो देखा कि वहाँ करीब 500 छात्र तथा कई मीडिया चैनल के लोग थे। इस वजह से अलग-अलग जगह छात्र अपनी माँग और समस्याएँ मीडिया को बता रहे थे। मैंने पिछले सात दिनों की उपलब्धियों तथा इसकी दिशा व दशा के बारे में एक छात्र से पूछा। उसने मुझ पर झल्लाते हुए बताना शुरू किया कि यहाँ तो हर लड़का नेता बना फिर रहा है। कोई एक-दूसरे की सुनता नहीं है। मीडिया से कोई कुछ बात कहता है, तो कोई कुछ। "एसएससी चोर है" और "वी वॉन्ट जस्टिस" आदि नारे लगाये जा रहे थे। आन्दोलन बुरी तरह असंगठित था और सभी आन्दोलनकारी एक-दूसरे से अपरिचित थे। इससे उनमें परस्पर अविश्वास की भावना थी। कोई भी आन्दोलनकारी खड़ा होकर नारा लगा देता या कुछ भी बोलने लग जाता। जब आन्दोलनकारियों को चुप कराया जाता, तो चुप कराने वाले लोग इतने उग्र हो जाते कि शोर और बढ़ जाता। चिल्ला-चिल्लाकर दसियों आन्दोलनकारियों के गले बैठ गये थे। उस लड़के ने, जो 27 फरवरी से आन्दोलन में शामिल था, मुझे पिछले 7 दिन के बारे में विस्तारपूर्वक बताया। उसने बताया कि "पहले दिन आन्दोलनकारियों ने अपने 3-4 प्रतिनिधि एसएससी हेडक्वार्टर भेजे ताकि वे आयोग के अधिकारियों से मुलाकात कर अपनी समस्या बता सकें। वहाँ उन्हें डराया-धमकाया गया। जिससे आन्दोलन खत्म किया जा सके।

सारे आन्दोलनकारी राजनीतिक तौर पर बिल्कुल सीधे-सादे थे इसलिए एसएससी के बाहर का हर अजनबी व्यक्ति उन्हें संदेहास्पद लगता था, चाहे वह सच्चा मददगार ही क्यों न हो। बार-बार आन्दोलनकारी यह कह रहे थे कि बाहर के किसी भी संगठन या राजनीतिक पार्टी को अपने आन्दोलन में शामिल नहीं करेंगे। जबकि आन्दोलनकारियों का भी खुद का कोई संगठन या संघर्ष समिति नहीं थी, इसलिए इसकी कोई निश्चित दिशा या गति ही नहीं थी। हालाँकि कुछ राजनीतिक पार्टियों के लोग व्यक्तिगत रूप से इस आन्दोलन में शुरू से ही शामिल थे और वे ही बाहर के मददगारों का सबसे ज्यादा विरोध कर रहे थे। इसी वजह से शुरुआत से ही आन्दोलन में गुटबाजियाँ अन्दर ही अन्दर पनप रही थी तथा मुझे लग रहा था कि इतने बिखरे हुए आन्दोलन को सफल नहीं बनाया जा सकता है। 5 मार्च को जब मैं पहुँचा तो घटना को अपनी छोटी सी डायरी में संक्षेप में दर्ज करने लगा। 5 मार्च तक यानी सातवें दिन तक आन्दोलकारी अपनी माँगों को लेकर बँटे हुए थे लेकिन असल में उनकी क्या माँगें हैं, यह सबको पता ही नहीं था।

अविश्वास और फूटपरस्ती का आलम यह था कि जो भी संचालन समिति पहली रात को चुनी जाती, उस पर कई आरोप लगाकर उसे अगले दिन हटा दिया जाता। यही हर रोज, हर संचालन समिति के साथ हो रहा था। उसके सदस्य ही कोचिंगों में जाकर छात्रों से आन्दोलन में शामिल होने की अपील करते थे। जो छात्र दिन-रात ईमानदारी से धरनास्थल पर केवल इसलिए रुकते थे कि कहीं आन्दोलन टूट न जाये, उन्हें ही आन्दोलन की वास्तविक दिशा व दशा के बारे में सबसे कम बताया गया। उनके लिए आन्दोलन का मतलब धरनास्थल पर बैठकर केवल नारे लगाने तक था और उन्हें उम्मीद थी कि इसी से घबराकर सरकार

माँगें मान लेगी। उन्हें कानूनी प्रक्रिया की न तो जानकारी थी और न ही यह अहसास था कि ऐसी माँगों के लिए इसकी अहम भूमिका होती है।

5 मार्च को वकील प्रशान्त भूषण आये और आन्दोलनकारियों को सम्बोधित करते हुए सभी बिखरी हुई माँगों को एक किया तथा आश्वासन दिया कि वे एक "जनहित याचिका" दायर करके इस केस को सुप्रीम कोर्ट में खुद लड़ेंगे। यह कहकर वे चले गये। लेकिन 8 मार्च तक किसी भी आन्दोलनकारी ने उन्हें "धाँधली" के सबूत उपलब्ध नहीं करवाये, जिसके दम पर वे "जनहित याचिका" दायर करते। फिर 9 मार्च को अचानक पता चला कि कुछ लड़कों ने उन्हें सबूत दे दिया थे। ये लड़के कौन थे? किसी को नहीं पता। अब चूँकि कोई "कोर कमेटी" या "लीडर" स्पष्ट तौर पर आन्दोलन को संचालित नहीं कर रहा था, इसलिए किसी की जवाबदेही भी नहीं थी। रोज नये-नये राजनीतिक नेता आन्दोलन में कुछ देर के लिए आते, भाषण देकर चले जाते, जिनमें अधिकतर नेता कांग्रेस के होते। नेताओं से कौन सम्पर्क कर रहा था, ये भी किसी को नहीं पता और न ही ये सवाल किसी ने उठाया। बस नेता के आने के समय की घोषणा हो जाती। अगर कोई पूछता भी तो उसे भीड़ ही यह कहकर चुप करा देती कि तुझे इससे लेना? नेता अपने भाषण के जरिये हमदर्दी जाहिर करते और छात्र ताली बजाते। इससे सबको लगता कि "भई, अब तो कुछ होगा"। आन्दोलन रहस्यमयी तरीके से चल रहा था। खासतौर पर उन लोगों के लिए जो यह सवाल करते कि "खाना, पानी, फल, बिस्किट कौन भिजवा रहा है?" इसका या तो कोई जवाब ही नहीं मिलता या फिर गोलमोल जवाब मिलता।

6 मार्च को तो हद ही हो गयी जब कुछ डरपोक किस्म के छात्र बोलने लगे कि नारे भी मत लगाओ क्यों उनसे शोर होता है तथा शोर होने पर पुलिस लाठीचार्ज कर देगी। "प्रधानमंत्री", "गृहमंत्री", "सरकार" सरीखे शब्द बोलने पर भी लोगों को चुप कराया जा रहा था। आन्दोलनकारी बोल रहे थे कि "हमारी लड़ाई एसएससी से है, सरकार से नहीं"। वे इतने भोले हैं कि यह भी नहीं समझते कि एसएससी एक सरकारी संस्था है और यह लड़ाई शुरू से लेकर अन्त तक सरकार के खिलाफ ही है। 8 मार्च की रात से सभी छात्र माँगों को लेकर एकजुट हो गये। इस आन्दोलन के दौरान मैं, मीडिया के खराब व्यवहार को साफ-साफ देख रहा था जिसको लेकर अकसर मीडिया की आलोचना की जाती है कि वह झूठी खबर फैलाता है। हमसे बताया गया कि "लाइव कांफ्रेंस" चल रही है, अतः आप अपने सारे सबूतों को मीडिया के सामने पेश कर दो, जबकि उस वीडियो रिकोर्डिंग को लाइव तो क्या, बाद में भी नहीं दिखाया गया। सबूतों को सार्वजनिक करते ही उनके लिंक एसएससी वेबसाइट से गायब कर दिये गये। आन्दोलन खत्म करवाने के लिए मीडिया ने झूठी खबरें फैलायी कि "आन्दोलन खत्म हो गया है। सभी माँगें मान ली गयी हैं और लोग जा रहे हैं।" ताकि बाहर के छात्र आन्दोलन को खत्म हुआ जानकर इसमें शामिल ही न हों। पुलिस के आम सिपाही हमसे सहानुभूति रखते थे, जबकि इंस्पेक्टर से ऊपर के अधिकारी आन्दोलन तोड़ने के लिए छात्रों को अकेले में बुलाकर "साम, दाम, दण्ड, भेद" की नीति अपनाते थे।

ऐसा कोई दिन नहीं जाता, जब आन्दोलनकारियों में गाली-गलौज के साथ हाथापाई न होती। गुट आपस में आरोप-प्रत्यारोप लगाते। मीडिया के आते ही छात्रों में कैमरे के आगे जाने की होड़ मच जाती।

9 मार्च को छात्रों ने अनशन करने का निर्णय लिया, लेकिन कुछ छात्र कहने लगे कि हम छात्रों में अनशन करने की हिम्मत नहीं है, तो निर्णय वापस ले लिया गया। आन्दोलन में फूटपरस्ती यहाँ तक बढ़ी कि गुटों के अन्दर भी गुट बन गये। छात्र तय नहीं कर पा रहे थे कि कौन-से गुट पर विश्वास करें। अब तक करीब 10 सांसद और विधायक माँग पूरी करवाने का आश्वासन देकर जा चुके थे, जबकि नतीजा वही "ढाक के तीन पात"।

12 मार्च को एक प्रभावी गुट ने दूसरे गुट पर "स्वराज इण्डिया पार्टी" के साथ मिलकर आन्दोलन को बेच देने का आरोप लगाया और कई छात्रों को अपने पक्ष में कर लिया। हालाँकि आरोप लगाने वाले गुट का भी अपना राजनीतिक स्वार्थ था, जिसे छात्र पकड़ नहीं पाये। कुछ लोग जो आन्दोलनकारियों का विश्वासपात्र बन चुके थे वे धरनास्थल से बाहर राजनेताओं से गुपचुप बैठकें करते, जिसके बारे में किसी को नहीं बताते। आखिरकार आन्दोलन में शामिल छात्रों का विश्वास कमजोर पड़ता गया और वे आन्दोलन से धीरे-धीरे दूर होते गये। जब लगभग 50 छात्र ही शेष रह गये तो 14 मार्च को प्रभावी गुट ने सुझाव दिया कि 16 मार्च को सभी छात्र और अध्यापक एक साथ एक दिन की भूख हड़ताल करेंगे। 15 मार्च का दिन भूख हड़ताल करके समर्थन जुटाने के लिए रखा गया। 15 मार्च को छात्रों ने विरोध स्वरूप "पकौड़ा" बेचा तथा प्रभावी गुट के लोग 16 मार्च की भूख-हड़ताल के लिए भीड़ जुटाने में लगे रहे। 15 मार्च को दोनों गुटों में मारपीट होते-होते बची। "प्रभावी गुट", कमजोर गुट को बोल रहा था कि कल से आन्दोलन में मत आना, तुम आन्दोलन को खराब कर दोगे।

16 मार्च को करीब-करीब 15 हजार बच्चे दिल्ली, जयपुर, इलाहबाद, पटना आदि शहरों से धरने में शामिल हुए। इस बड़ी संख्या को देखकर छात्र खुश थे। उन्हें लगा कि आज मंजिल मिलेगी। प्रभावी गुट खुश था क्योंकि उनकी मेहनत के चलते भीड़ धरने पर पहुँची थी। दोपहर होते-होते प्रभावी गुट की पोल खुल

गयी। पता चला कि यह गुट "कांग्रेस" से जुड़ा था। पिछले कई दिनों से ये लोग और उसके छात्र संगठन गोपनीय बैठकें कर रहे थे। इसी कारण उनके कार्यकर्ता एनएसयूआई की पट्टी डालकर आन्दोलन में आ गये और प्रभावी गुट ने उनका स्वागत किया। यह गुट शुरू से ही कांग्रेस के नेताओं को बुलाने के लिए बेताब था। उस दिन करीब 15 हजार छात्रों के बीच कांग्रेस अध्यक्ष "राहुल गाँधी" को बुलाकर उस गुट ने कांग्रेस नेताओं के सामने अपनी छवि बनाने की कोशिश की। दूसरे गुट की भी यही कोशिश थी कि "स्वराज इण्डिया" में अपनी पहुँच बना सकें। कुल मिलाकर आन्दोलन दो गुटों की राजनीतिक महत्त्वकांक्षा की भेंट चढ़ गया जिसे आन्दोलनकारी पहचान न सकें और जब उन्हें इसका पता चला, तब आन्दोलन में कुछ बचा ही नहीं था। दिल से आन्दोलन की सफलता चाहने वाले आन्दोलनकारी उस दिन दोपहर से ही आन्दोलन छोड़कर चले गये। अब केवल कुछ बचे थे, जो बस नारेबाजी कर रहे थे।

15 दिन बाद 31 मार्च को छात्र जंतर मंतर पर इकट्ठे हुए। लेकिन इतने दिन बाद भी छात्रों में परिपक्वता नहीं दिखायी दी। उनमें माईक पर बोलने को लेकर झगड़े हुए। करीब 10 हजार छात्र यहाँ इकट्ठा हुए। छात्र संसद का घेराव करने के लिए इकट्ठा हुए थे। संसद का घेराव करने की अनुमति प्रशासन किसी भी कीमत पर देने को तैयार नहीं हुआ लेकिन 3 बजे दिल्ली की सड़कों पर मार्च निकालना शुरू किया गया जो कनॉट प्लेस से गुजरते जब इंडिया गेट की ओर बढ़ने लगा तो पुलिस ने भयंकर लाठीचार्ज करके करीब 300 छात्रों को गिरफ्तार कर लिया जिनमें मैं भी था। हमें करीब 3 घण्टा थाने में रखने के बाद छोड़ दिया गया।

अब इस आन्दोलन की स्थिति यह हो गयी है कि न तो यह चलने की स्थिति में है और न ही समाप्त होने की। इसमें ऊर्जा नहीं बची है, बस आन्दोलन घिसट रहा है।

इस आन्दोलन के दौरान मैं मीडिया, पुलिस, सरकार, विपक्षी पार्टियों के असली चेहरे को नजदीक से जान पाया। इस व्यवस्था में किसी मुकाम तक पहुँचने में ऐसे आन्दोलन नाकाफी हैं। ऐसे आन्दोलन जिनके आन्दोलनकारी और नेतृत्वकर्ता राजनीतिक चेतना से सम्पन्न न हों, मौजूदा संकट से पार नहीं पा सकते।

***पेज 52 का शेष***

स्तर पर आत्महत्याओं के मामलें में महाराष्ट्र सबसे उपर है। अकेले महाराष्ट्र में 14 प्रतिशत छात्रों ने आत्महत्या की है। बंगाल और तमिलनाडु इस मामले में महाराष्ट्र से बस थोड़े ही पीछे हैं। पिछले कुछ समय से मेडिकल के छात्रों में आत्महत्या के मामलों में तेजी से इजाफा हुआ है।

देश में ऐसी ही हालत किसानों की भी है जिनकी आत्महत्या दर लगातार बढ़ रही है। इसकी मुख्य वजह बैंकों से या फिर स्थानीय सूदखोरों से लिया गया कर्ज है। जिसकी ब्याज दर इतनी अधिक होती है कि कर्जे की रकम खत्म होने के बजाये बढ़ती ही जाती है और किसान की मुश्किलों को भी बढ़ाती जाती है। जब उसे बाजार में अपनी फसलों का दाम उतना भी नहीं मिल पाता कि उसकी लागत निकल सके तो कर्ज की रकम पाटना उसके हाथों से निकता चला जाता है। बाज़ार में भाव इसलिए अच्छा नहीं मिल पाता क्योंकी सरकारी नीतियों के कारण किसान को दी जानेवाली सुविधाओं को निरन्तर खत्म किया जा चुका है। इस कारण किसान को निजी कम्पनियों पर निर्भर रहना पड़ता है। निजी कम्पनिया बाजार में अपनी मनमानी करती हैं और कम से कम दाम पर किसानों से उनकी फसल खरीदती है। इस बीच मौसम की मार किसान के लिए किस्मत की मार साबित होती है। प्रोसीडिंग ऑफ द नेशनल एकेडमी ऑफ साइन्स के एक शोध के अनुसार केवल मौसम के बिगड़ने की वजह से पिछले 30 सालों में लगभग 60 हजार किसानों ने आत्महत्या की है। रिपोर्ट कहती है कि फसल के पकने वाले सीजन में अगर 1 डिग्री तापमान बढ़ जाये तो भारत में 65 किसान आत्महत्याएँ कर लेते हैं। इसी से हम किसान की कठिनाइयों का अन्दाजा लगा सकते हैं और इन्ही कठिनाइयों के चलते उसे क्या कुछ नहीं करना पड़ता। ऐसे में नेताओं के इस तरह के बयान आना बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण है कि "किसान इसलिए आत्महत्या कर रहे है क्योंकी उनको नपुंसकता की समस्या है।" एक सरकारी रिपोर्ट के अनुसार सन 2015 में भारत में हुई कुल आत्महत्याओं में से 9.4 प्रतिशत आत्महत्याएँ केवल किसानों ने की है। यह उन आत्महत्याओं का आँकड़ा है जो दर्ज हो सकी हैं. असल आंकड़ा और भी भयावह हो सकता है।

सैन्य बलों में आत्महत्या की प्रवृत्ति में भी हाल के दिनों में काफी वृद्धि हुई है। नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो की रिपोर्ट बताती है कि सन 2015 में केन्द्रीय सशस्त्र पुलिस बल में 60 आत्महत्याएँ दर्ज हुईं। रक्षा मंत्रालय द्वारा जारी किये गये आँकड़ों के मुताबिक 1 जनवरी 2014 से 31 मार्च 2017 के बीच 348 जवानों ने आत्महत्या की।

ये आत्महत्याएँ दर्शाती हैं कि हम ऐसे खोखले और खंडित समाज में जी रहे हैं जहाँ कुछ को बेरोजगारी मार देती है, कुछ को कर्ज मार देता है, कुछ को असफल होने का डर मार देता है, कुछ सुन्दर नहीं है इसीलिए जान दे देते हैं, कोई रिश्ते में आयी दिक्कतों के कारण अपनी जान दे देता है। और जान देने कि यह दर हर साल भयानक तेज़ी से बढ़ रही है। 2005 से 2015 के बीच इसमें 17.3 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई है। एक समाज वैज्ञानिक एमिल दुर्खिम का कहना था कि "यदि किसी समाज में आत्महत्या कि दर अधिक हो तो यह कहा जा सकता है कि उस समाज में सामाजिक संरचना को विघटित करने वाली विपथगामी शक्तियाँ तीव्रगति से कार्यरत हैं।" आखिर वह शक्तियाँ कौन सी हैं जिनकी वजह से ऐसी परिस्थितियाँ तैयार हो गयी हैं कि एक इंसान जीने के बजाय खुद की जान ले लेना ज्यादा उचित समझता है। क्या यह इस व्यवस्था द्वारा पैदा किया हुआ संकट नहीं है। ऐसी व्यवस्था जो एक इनसान को इनसान न समझने के बजाय एनर्जी पैकेट्स समझती हो जिसकी एनर्जी को चूस कर मुनाफा कमाया जा सकता हो और फिर उसे चूसने के बाद फैंक दिया जाता हो वहाँ आत्महत्याओं पर लगाम लगाना असम्भव है। एक मानव केन्द्रित व्यवस्था ही आत्महत्याओं को खत्म कर सकती है।

# घड़ी की रफ्तार सुस्त पड़ रही है

**--हैरी मैगडॉफ**

**(हैरी मैगडॉफ 1969 से मृत्युपर्यन्त मन्थली रिव्यू पत्रिका के सहसम्पादक थे। यह लेख 1995 में न्यू यार्क में आयोजित समाजवादी विद्वान सम्मेलन में दिये गये भाषण पर आधारित है जो पहली बार मन्थली रिव्यू के जून 1995 अंक में प्रकाशित हुआ था। उद्धरण लेखक द्वारा जोड़े गये हैं।)**

अर्थशास्त्रियों के सामने एक सीधा-सादा सवाल है-- यह कमबख्त अर्थतन्त्र कैसे काम करता है? हर रोज लाखों-करोड़ों के लेन-देन किये जाते हैं और और फिर भी यह व्यवस्था बँधी रहती है। उत्पादन, वितरण और उपभोग की चक्करदार प्रक्रिया आपस में कैसे तालमेल बिठाती है? विभिन्न विचारधाराओं वाले अर्थशास्त्रियों के द्वारा भिन्न-भिन्न व्याख्याओं के बावजूद, इस बात पर उनमें एक आम समझदारी है कि यह व्यवस्था खुद को किस तरह पुनरुत्पादित और विकसित करती है। यहाँ इस बात पर सरलीकृत आम सहमति है कि कैसे इसे एक साथ जोड़े रखना है। (1) माल (चाहे वह प्राथमिक हो, मध्यवर्ती हो या तैयार माल) पैसे के लिए बेचे जाते हैं। (2) पैसे का भुगतान आखिरकार दो धाराओं में खत्म होता है मजदूरों को मजदूरी देने तथा टूटफूट मरम्मत कोष और मालिकों का मुनाफा। (3) मजदूर अपनी मजदूरी का इस्तेमाल उपभोक्ता सामान खरीदने में करते हैं। (4) मालिक अपनी आमदनी का एक छोटा हिस्सा मशीन के टूटेफूटे पुर्जों को बदलने में खर्च करते हैं और बाकी बची आमदनी का अधिकांश भाग अपना मुनाफा बढ़ाने पर (बहरहाल सिर्फ बहुत ही छोटा हिस्सा उपभोग पर खर्च करते हैं), अपने व्यापार पर या नया धन्धा शुरू करने पर खर्च करते हैं। ज्यादा निवेश के साथ ज्यादा लोगों को रोजगार मिलता है, ज्यादा उत्पादन होता है और और पहले से भी ज्यादा पैसा उत्पादन के विस्तार के लिए हासिल होता है। इस तौर से एक तरफ उत्पादक और उपभोक्ता माल की क्षमता के बीच और दूसरी ओर, इन दोनों औद्योगिक शाखाओं में से हर एक के उत्पादन की प्रभावी माँग के बीच एक सन्तुलन कायम रखा जाता है।

यह चक्करदार प्रक्रिया हमेशा निर्बाध नहीं होती, बल्कि बाधाओं और असन्तुलनों को समय से पहले दूर कर लिया जाता है। कच्चे माल और खाद्य पदार्थ हासिल करने के लिए दूसरे राष्ट्रों के साथ व्यापार कुछ हद तक जरूरी हो सकते हैं। कभी-कभी अव्यवस्था पैदा होने और एक हद तक विदेश व्यापार के बिना एक बन्द और विशुद्ध पूँजीवादी अर्थव्यवस्था अपने दम पर हमेशा आगे बढ़ने में समर्थ हो सकती है। ये सब उस आर्थिक सिद्धान्त के मूलतत्त्व है जो पूँजीवाद की शुरुआत में उभरा था और जो निहित रूप से या स्पष्टतया आज भी पूँजीवाद की अकादमिक और प्रचलित समझदारी में दृढ़ता से कायम है।

यह एक मनभावन और सुखद सिद्धान्त है, लेकिन एक ऐसा सिद्धान्त जो सिर्फ अमूर्तन के बेहद ऊँचे स्तर पर और काल्पनिक परिस्थितियों में ही कोई मायने रखता है। सबसे बेहतर, यह वास्तविक दुनिया के अध्ययन का एक प्रारम्भिक बिन्दु है। लेकिन जब कोई इस सिद्धान्त की अन्तर्निहित धारणाओं में गहरे उतरता है और औद्योगिक पूँजीवाद के 200 सालों से भी अधिक पुराने इतिहास को खंगालता है तो यह साफ हो जाता है कि एक बन्द पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में आत्म-निर्भर विकास की परिस्थितियाँ वास्तविक दुनिया में बिलकुल ही मौजूद नहीं होतीं। वास्तव में स्वचालित निरन्तरता के अवरोध इस व्यवस्था में अन्तर्निहित हैं। इसलिए, अगर पूँजीपति अपना सारा मुनाफा अपने व्यापार के विस्तार में लगा देता है, तो एक ऐसा मोड़ आता है जब उत्पादन क्षमता बहुत ही ज्यादा हो जाती है। उदहारण के लिए, किसी देश में जब सभी परिवारों के पास रेफ्रिजरेटर हो जाये, तो उस उद्योग द्वारा और अधिक रेफ्रिजरेटर बनाने के लिए अपने मुनाफे का निवेश करना आत्मघाती होगा। अमूमन बचीखुची उत्पादन क्षमता ही जनसंख्या वृद्धि और टूटफूट से पैदा होनेवाली माँग को पूरा करने के लिए काफी होगी। सभी उद्योगों के अन्तहीन विस्तार की यही ठेठ सीमा है। इसलिए, अगर सभी चीजें समान हों तो बहुत ज्यादा निवेश करना सन्तुलित विकास के लिए एक स्थायी खतरा बन जाता है। दूसरी ओर, अगर फायदेमन्द निवेश के अवसर की कमी के चलते मुनाफा बेकार पड़ा रहे, तो उत्पादक माल की माँग सुस्त पड़ जाती है या गिर जाती है और एक चेन रिएक्सन शुरू हो जाती है-- श्रम बाजार में नये-नये शामिल लोगों और बढ़ती उत्पादकता के चलते छँटनीग्रस्त मजदूरों को काम नहीं मिलता, उपभोक्ता मालों की प्रभावी माँग (क्रय शक्ति की कमी के चलते) सिकुड़ जाती है और अर्थव्यवस्था ठहरावग्रस्त हो

जाती है या भँवर में गोते लगाने लगती है।

और फिर भी, अतिरिक्त क्षमता के अन्तर्निहित खतरे के बावजूद, पूँजीवाद अपनी उत्पादक शक्तियों के विशाल, दीर्घकालिक विस्तार के चलते विशिष्ट है। यह कैसे? इसका जवाब देने के लिए हमें सिद्धान्त से इतिहास की ओर चलना होगा। अतिशय संचय के फंदे से बचने के लिए तीन रास्ते खास तौर पर अहम रहे हैं। पहला, नये उत्पाद का विकास या तकनोलोजी में बुनियादी बदलाव। दूसरा, ऊँची मजदूरी-- श्रम-शक्ति के मूल्य में बढ़ोतरी, जैसा कि मार्क्सवादी प्रस्तावित करते हैं। जुझारू वर्ग संघर्ष न सिर्फ बेहतर मजदूरी की ओर ले जाता है, बल्कि सामजिक कल्याण के विभिन्न रूपों को जन्म देता है, जिसके चलते घरेलू बाजार का विस्तार होता है। तीसरा, विदेशी धरती पर मालों की बिक्री और निवेश के लिए बाजारों का विस्तार। ये सभी कारक पूँजीवादी विकास की बड़ी सरहदें रही हैं। इन सब ने जहाँ पूरी धरती पर पूँजीवादी व्यवस्था के विस्तार और विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी, वहीं इनमें से हर एक की अपनी-अपनी सीमाएँ भी रही हैं। नयी खोजें माँगने से नहीं टपक जाती, और यह भी जरूरी नहीं कि जब वे आयें तो किसी उपचारक के आदेश के मुताबिक ही हों। कुछ खोजें विकास का नया आवेग पैदा करने की सम्भावना लिये होती हैं। हो सकता है कि दूसरी खोजें समग्रता में निवेश की सुस्ती और तंगी की भरपाई करने में ज्यादा असरदार न हों। जहाँ तक घरेलू बाजार की सहायता के लिए जीवन स्तर ऊँचा उठाने की बात है, इसका कोई भरोसा नहीं कि वह जारी रहे या अपने आप में इस काम के लिए पर्याप्त हो। पूँजीपति वर्ग और उनका राज्य बड़े बेमन से रियायतें देते हैं और मुनाफे की हिफाजत के लिए वे इस बढ़ोतरी को रोकने की भी कोशिश कर सकते हैं और जैसा कि आज के माहौल में दिख रहा है, वे पहिये को उल्टा भी घुमा सकते हैं। जहाँ तक अतिशय संचय के लिए तीसरे बचाव का सवाल है, यानी परिधि के देशों में मालों के लिए बाजार और निवेश की खातिर विदेशी बाजार, यह अल्पविकास के चलते उन देशों में उत्पन्न गरीबी से हमेशा ही सीमित होता है और साथ ही परिधि के भूभाग में घुसपैठ और वर्चस्व की पूँजीवादी प्रवृत्ति इस मोर्चे पर भी बाधाएँ उत्पन्न करती है।

फिर यदि आत्मनिर्भर विशुद्ध पूँजीवाद आर्थिक विकास के लिए अपर्याप्त है, तो पूँजीवादी विकास की रूपरेखा को उसकी सरहदों के सम्भावित फैलाव या संकुचन में ढूँढने की जरूरत है। इस हिसाब से, औद्योगिक क्रान्ति के शुरुआती सौ वर्षों के बाद हुए एक भारी बदलाव पर ध्यान देना जरूरी है। औद्योगिक पूँजीवाद के शैशव और तरुणाई में 1760 से 1870 तक ऐसा लगता था जैसे भविष्य का आर्थिक विकास और विस्तार अन्तहीन है। हालाँकि पिछले सौ साल के दौरान यह लगातार साफ होता गया कि ये सरहदें असीम नहीं हैं।

यही नहीं, इनमें सिकुड़ने तथा राष्ट्रों के बीच सामाजिक दुर्गति को बढ़ाने और तीखी प्रतियोगिता को जन्म देने की रुझान भी मौजूद है। उन्नीसवीं सदी की अन्तिम चौथाई से ही परिपक्व पूँजीवाद के इन लक्षणों का इतिहास के ढर्रे पर एक बुनियादी असर रहा है और अगर हम आज के मुद्दों का सामना करना चाहते हैं तो इनका लेखाजोखा लेना बहुत जरूरी है।

दूसरे विश्वयुद्ध के ठीक बाद एक जानेमाने ब्रिटिश अर्थशास्त्री, जे आर हिक्स ने अपनी किताब वैल्यू एन्ड कैपिटल के उपसंहार में लिखा था-- "कोई इस चिन्तन को दबा नहीं सकता कि शायद पिछले दो सौ वर्षों की सम्पूर्ण औद्योगिक क्रान्ति एक विशाल लौकिक तेजी के सिवा और कुछ नहीं थी।" आगे चलकर जॉन रोबिन्सन ने इसमें एक परिप्रेक्ष्य जोड़ते हुए इस विषय को उठाया जिसकी अब तक उपेक्षा या अनदेखी की जाती रही-- "शायद ही कोई इस बात से इनकार करे कि पूँजीवाद का नये भूभागों में विस्तार ही उस चीज का प्रेरक रहा है जिसे एक अकादमिक अर्थशास्त्री ने पिछले दो सौ वर्षों की "विशाल लौकिक तेजी" कहा है तथा कई अकादमिक अर्थशास्त्री बीसवीं सदी में पूँजीवाद की व्याकुल परिस्थिति के लिए पूरी दुनिया में 'सरहदों को बन्द किये जाने' को जिम्मेदार मानते हैं।"[1]

इस तरह के वक्तव्य और परिकल्पनाएँ जिनको मैं उद्धृत कर रहा हूँ, वे निश्चय ही कुछ हद तक अतिशयोक्तिपूर्ण हैं। इसके बावजूद यह प्रासंगिक है क्योंकि यह उस अमूर्त सिद्धान्त से आगे ले जाता है जो पूँजीवादी इतिहास के विहगावलोकन की प्रभावी विचारधारा में अन्दर तक धँसा हुआ है। इस तरह, उत्पादक क्षमता का विस्तार और प्रभावी घरेलू माँग की सीमाओं के बीच का अन्तर्विरोध औद्योगिक क्रान्ति के शुरुआती वर्षों में ही उत्पन्न हुआ। नयी तकनीक पर आधारित ब्रिटेन की विनिर्माण क्षमता में तेज रफ्तार विकास और उसकी सम्पत्ति में प्रभावशाली बढ़ोतरी उसके अतिरिक्त उत्पादन का निर्यात करने के लिए नयी सरहदों के विस्तार पर निर्भर थी। वास्तव में, यह "विश्व का वर्कशॉप" था जिसके चलते ब्रिटेन के औद्योगिक कौशल और सम्पत्ति में समृद्धि आयी। इसके बावजूद, उद्योग-धंधों के इस विस्तार ने बढ़ती आबादी के लिए भरपूर रोजगार मुहैया नहीं किया।

खेती और उद्योग में तकनीकी विकास ने बड़े पैमाने पर बेरोजगारी को जन्म दिया, जिसका आंशिक समाधान "नयी धरती" की ओर प्रवास से हुआ। जब घरेलू बाजार इतने ज्यादा बड़े नहीं थे कि विस्तृत क्षमता वाले मालों को खपा सकें, तब इलाकों को जीतकर, राजनीतिक प्रभाव जमाकर तथा कर्ज, सहायता और निवेश के जरिये विदेशी बाजार बनाये गये। जब दूसरे यूरोपीय देशों

और यूरोपियों द्वारा बसायी गयी भूमि ने भी औद्योगिक पूँजीवाद का रास्ता पकड़ लिये, तब वही देश उन सरहदों की सीमाओं के खिलाफ खड़े हो गये जो ब्रिटेन के पास थे और उन्होंने भी इलाके जीतने के जरिये इसका रास्ता निकालने का प्रयास किया। 1800 में यूरोप और उसके अधिकृत प्रदेशों ने, जिनमें पूर्ववर्ती उपनिवेश भी शामिल थे, धरती की सतह के 55 प्रतिशत पर अपने अधिकार का दावा किया-- यूरोप, उत्तरी और दक्षिणी अमरीका, भारत का अधिकांश भाग और अफ्रीका के तट पर एक छोटा भाग। यकीनन, इनमें से अधिकांश भाग पर सिर्फ दावा ही किया गया था, प्रभावी नियन्त्रण 35 प्रतिशत से कुछ कम इलाके पर ही था, जिनमें से ज्यादातर खुद यूरोप का हिस्सा थे। 1878 तक, 65 लाख वर्ग किलोमीटर अतिरिक्त जमीन पर दावा किया गया; इस अवधि में नयी दावेदारियों और 1800 में जिन भूभागों पर दावा किया गया था, उन सब पर भापचालित जहाजों, रेलवे के निर्माण और उन्नत हथियारों की सहायता से मजबूती से नियन्त्रण कायम कर लिया गया। 1800 से 1878 के बीच वास्तविक यूरोपीय शासन (उत्तरी और दक्षिणी अमरीका में पुराने उपनिवेशों सहित) लगभग दुगुना हो गया, यानी धरती की सतह के 35 प्रतिशत हिस्से से बढ़ कर 67 प्रतिशत पर उनका राज कायम हो गया।[2] औद्योगिक क्रान्ति की तकनीकी उपलब्धियाँ, दूसरे यूरोपीय देशों और संयुक्त राज्य अमरीका का औद्योगीकरण, घरेलू बाजारों का बढ़ना तथा गैर पूँजीवादी इलाकों में बाजार और निवेश के अवसरों का पैदा किया जाना-- इन सब ने औद्योगिक क्रान्ति के जन्म के बाद की सौ वर्षों की तेजी को खुराक दी। फिर भी जिस तेजी को इतना मनोहर माना गया, उसका अन्त एक दीर्घकालिक और उस समय की तीव्र विश्वव्यापी मन्दी में हुआ। 1889 में अमरीकी सामाजिक विज्ञान संगठन के पूर्व अध्यक्ष, डेविड ए वेल्स ने इन वर्षों में हुए बदलाव का वर्णन इस प्रकार किया--

> व्यापार, वाणिज्य और उद्योग की विलक्षण और कई मायने में अभूतपूर्व अव्यवस्था और मन्दी का आस्तित्व, जिसने पहली बार खुद को 1873 में प्रकट किया, वह तीव्रता में उतार-चढ़ाव के साथ आज तक (1889) कायम रहा। यह एक आर्थिक और सामाजिक परिघटना है जिसको हर जगह स्वीकार किया गया। इसकी सबसे ज्यादा ध्यान देने योग्य विशेषता इसका विश्वव्यापी होना रहा है; जिन राष्ट्रों ने युद्ध किया उनके साथ-साथ उन राष्ट्रों को भी प्रभावित करना जिन्होंने शान्ति कायम रखी; जिनके पास सोने पर आधारित मजबूत मुद्रा थी, उनके साथ-साथ कमजोर मुद्रा वाले राष्ट्रों को भी जो अपने मौद्रिक वादे पूरा न कर पाये; जो राष्ट्र माल के मुक्त विनिमय की व्यवस्था के अधीन थे उनके साथ-साथ, जिनके यहाँ माल का विनिमय कमोबेश नियंत्रित था उनको भी अपनी चपेट में ले लेना। यह इंग्लैण्ड और जर्मनी जैसे पुराने समुदायों के लिए जितना विकट था, उतना ही आस्ट्रेलिया, दक्षिण अफ्रीका और कैलिफोर्निया के लिए भी, जो नयी दुनिया का प्रतिनिधित्व करते हैं।[3]

इस बड़ी मन्दी का महत्त्वपूर्ण पहलू यही था कि यह तकनोलोजी की नयी लहर के बीच पूँजी के अतिसंचय का परिणाम थी-- एक दूसरी औद्योगिक क्रान्ति जिसमें बड़े पैमाने पर इस्पात, बिजली और सिन्थेटिक रसायनों का उत्पादन काबिले-गौर था। यह वही दौर था जब छोटी औद्योगिक शक्तियों ने व्यापार, वित्त और सैन्य क्षमता में ब्रिटेन के वर्चस्व को चुनौती देने के लिए खुद को पर्याप्त रूप से विस्तारित किया था। उनको भी भारी उत्पादन वाले नये उद्योगों का माल खपाने के लिए बाजार की जरूरत थी। अतिउत्पादन के अन्तर्गत तीखी प्रतियोगिता और सीमित बाजार के चलते कीमतों में तेजी से गिरावट आयी, दिवालियापन बढ़ा तथा बड़े व्यापारी संगठनों, कार्टेलों और ट्रस्टों का उभार हुआ। इस बड़ी मन्दी से एकाधिकारी पूँजी और नये साम्राज्यवाद का उदय हुआ-- पहले जिसका उल्लेख एक भारी बदलाव के रूप में किया गया है।

नये साम्राज्यवाद के दो विशिष्ट लक्षण हैं। पहला, संयुक्त राज्य अमरीका और जापान सहित सभी औद्योगीकृत शक्तियों की भागीदारी। दूसरा, उपनिवेशों की छीना-झपटी और राष्ट्रों के बीच परिधि के बँटवारे को लेकर झड़प। 1870 के दशक और 1914 के बीच भूभागों को जीतने की दर उन्नसवीं सदी की शुरुआती तीन चौथाइयों की तुलना में तीन गुनी थी। 1914 आते-आते उपनिवेशिक शक्तियों, उनके उपनिवेशों और पूर्ववर्ती उपनिवेशों का कुल फैलाव धरती की सतह के 85 प्रतिशत तक था।[4]

औद्योगिक क्रान्ति के बाद के सौ वर्षों की लौकिक तेजी ने ब्रिटेन की अगुआई में एक अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था को विकसित किया जिसके तहत बैंक ऑफ इंग्लैण्ड द्वारा संचालित सोने के मानक का विस्तार हुआ और लन्दन में पहुँचनेवाले कच्चे माल की कीमत में बढ़ोतरी हुई। लेकिन केन्द्रीय राष्ट्रों में औद्योगीकरण के फैलाव और लगातार पूँजीसंचय के द्वारा प्रेरित विस्तार के अभियान ने न सिर्फ उपनिवेशिक भूभागों के लिए होड़ को बढ़ावा दिया, बल्कि खुद उन राष्ट्रों के बीच बाजार के लिए प्रतियोगिता, संरक्षणवाद में बढ़ोतरी तथा घरेलू आर्थिक विकास और मुनाफे के लिए विदेशी कर्ज सहायता और पूँजी निवेश का विस्तृत इस्तेमाल शुरू हुआ। इसके साथ ही ब्रिटिश साम्राज्य के वित्तीय, आर्थिक और व्यापारिक

प्रभुत्व को चुनौती मिली, हथियारों की होड़ शुरू हुई और आखिरकार पहला विश्व युद्ध हुआ।

नेपोलियन काल के युद्धों और पहले विश्व युद्ध के बीच की अवधि की व्याख्या आम तौर पर एक दीर्घकालीन शान्ति युग के रूप में की जाती है। जबकि ऐसा था नहीं। यूरोप में स्थानीय युद्ध (फ्रांस-प्रशिया, क्रीमिया युद्ध), संयुक्त राज्य अमरीका में गृह युद्ध तथा अफ्रीका और परिधि के देशों में दूसरी जगहों पर कब्जा करने के लिए नृशंस लड़ाईयाँ हुई थीं।

लेकिन अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था के केन्द्र, यूरोप के भीतर दशकों तक सत्ता का सन्तुलन कायम रहा-- जब तक पूँजीवाद की नयी मन्जिल नहीं आ गयी। 1873-1896 की बड़ी मन्दी के साथ ही जो बदलाव शुरू हुए वे वर्तमान सदी के इतिहास की पूर्वपीठिका थे-- एक ऐसा युग जिसमे दो विश्व युद्ध हुए, महामन्दी आयी, अमरीकी प्रभुत्व और तेजी का एक छोटा सा अन्तराल, जिसके बाद ठहराव का एक लम्बा दौर सामने आया जिसमें हम आज भी गोते लगा रहे हैं। आज भी हम दैत्याकार निगमों के वर्चस्व वाली दुनिया में जी रहे हैं, सिवाय इसके कि वित्तीय संस्थानों और मुद्रा बाजार के द्वारा ज्यादा से ज्यादा शक्ति का इस्तेमाल किया जा रहा है। वैश्विकरण की नयी मन्जिल ने शक्तियों के बीच प्रतिद्वंद्विता के स्रोतों को कम नहीं किया है, बल्कि इसमें नये लक्षण जुड़ गये हैं। अतिशय क्षमता के तनाव के चलते बाजार के लिए प्रतियोगिता का तीव्र होना जारी है। और एक शानदार इलेक्ट्रोनिक तकनीक मौजूद होने के बावजूद इसमें और इससे जुड़े दूसरे क्षेत्रों में होनेवाला निवेश, पिछली एक चौथाई सदी से कायम ठहराव को पलटने के लिए पर्याप्त साबित नहीं हुआ।

कुल मिलकर, पिछली सदी का एक विहंगावलोकन यह दिखाता है कि हमारा वर्तमान कत्तई अनोखा नहीं है। अपने सभी नये लक्षणों के साथ, यह पूँजीवाद की लम्बे समय से चली आ रही मन्जिल के अन्तर्गत ही आता है। इस लेख में कई चीजों को छोड़ दिया गया है, खास कर समाजवादी क्रान्ति, अनौपनिवेशिकरण और पिछला बड़ा युद्ध खत्म होने के बाद से युद्धों की बहुलता। लेकिन इनका जिक्र न होना इस मूल विषय को अमान्य नहीं करता। वास्तव में वे इजारेदारी और पूँजीवाद की साम्राज्यवादी मन्जिल की हिंसक और विनाशकारी प्रकृति को और दमदार तरीके से दर्शाते। यहाँ विचार-विमर्श के लिए जो प्रासंगिक है, वह है 1970 से लम्बी अवधि की गिरावट, दो विश्व युद्ध, महामन्दी, साम्राज्यवाद, सभी औद्योगिक राष्ट्रों की लगातार घाटे के वित्तपोषण पर निर्भरता और आजकल घड़ी की सुई का सुस्त पड़ना, ये सब कुछ पूँजीवाद में अन्तर्निहित अवरोधों के दबदबे वाली एक ही बड़ी तस्वीर के हिस्से हैं।

कल्याणकारी राज्य ने दूसरे महायुद्ध के बाद की कुछ जरूरतों को पूरा किया-- सोवियत खेमे में पूर्ण रोजगार का उदहारण और साम्राज्यवादी दुस्साहसों के जन समर्थन की इच्छा। लेकिन यह तभी व्यवहार्य था जब तक युद्ध के बाद के शुरुआती वर्षों की समृद्धि की असामान्य लहर जारी थी। अब कई वर्षों से अतिशय संचय और राष्ट्रों के बीच होड़ की वही चिरपरिचित शक्तियाँ एक विश्वव्यापी आर्थिक मंथरता के बीच दुबारा खुद को साबित कर चुकी हैं। एक वैश्विक वित्तीय अधिरचना के विकास ने एक समय मुनाफे और आर्थिक व्यवहार्यता को टिकाये रखने में मदद की थी। फिर भी वित्तीय व्यवस्था का भुरभुरापन बढ़ती आवृति के साथ अपनी नुमाइश करता रहा। जैसा कि पहले ही बताया गया, टेलीकम्युनिकेशन का नया उद्योग और नया सूचना राजपथ अपने उत्तम रूप में अब तक दूसरी जगहों पर निवेश में आयी गिरावट की भरपाई करने में आंशिक रूप से ही सहायक हो पाया है।

तब साम्राज्यवादी शक्तियाँ और परिधि के देश निजात पाने के लिए किस तरफ देख रहे हैं? पूर्वी यूरोप और चीन में निर्यात और निवेश की सम्भावना। लेकिन अगर सिकुड़ती सरहदों वाली दुनिया में सभी इसी रास्ते की ओर टकटकी लगाये हुए हैं तो टकराव और पहले से भी ज्यादा होड़ का सामने आना लाजिमी है। दुःख और विपत्ति का ऐसा लम्बा प्रवचन आखिर क्यों? इसलिए कि भले ही यह कोई नीतिकथा नहीं है, लेकिन मेरी राय में इससे एक सबक मिलता है। और वह यह है कि हमें इस भ्रम और मिथक को त्यागना होगा कि पूँजीवाद को फिर से गुंजायमान करने और पिछले सौ वर्षों के रुझानों को पलटने के लिए पूँजीवाद के पुनर्गठन का कोई उपाय बचा है। हमारे कुछ साथी पूँजी संचय के एक बेहतर ढाँचे के लिए संघर्ष की बात करते हैं। लेकिन ऐसा पूँजी संचय धोखे की टट्टी है।

जिस सुधार के बारे में प्रगतिशील और रेडिकल लोग बात करते हैं वह उत्पादकता बढाना और मौद्रिक प्रणाली को सरल बनाना है-- ये सभी लोग अर्थव्यवस्था के विकास की रफ्तार तेज करने का उपाय सुझाते हैं, जबकि असली समस्या तो तेज रफ्तार का विकास ही है। इस तरह हमारे प्रगतिशील और रेडिकल लोग पूँजीवादी विचारधारा के मूल तत्वों के बोझ से खुद को मुक्त करते नहीं जान पड़ते। साफ बात यह कि मैं यहाँ जनता की सुरक्षा की बात, धनाढ्यों से छीनकर गरीबों की हिफाजत की बात नहीं कर रहा हूँ। यह लड़ाई तो एक बड़ी प्राथमिकता है ही।

लेकिन हमें खुद को फर्जी दुखहरण से नहीं बहलाना चाहिए। हमें अपनी ऊर्जा

का इस्तेमाल न सिर्फ मौजूदा संघर्षों में लगाना है, बल्कि इस बात की भी शिक्षा देनी है कि पूँजीवाद असल में काम कैसे करता है और यह भी कि इसका विकल्प है। आर्थिक और सामजिक मुद्दों को लेकर लापरवाही का स्तर बेहिसाब है। यही वजह है कि जो लोग बेहतर समझ रखते हैं उनकी यह जिम्मेदारी है कि वे अपने आस-पड़ोस, धार्मिक और सामुदायिक केन्द्र में जाकर चर्चा-परिचर्चा में लग जायें, पर्चे पुस्तिकाओं और किताबों का वितरण करें और हर छोटे-बड़े पैमाने पर प्रचारक और मिशनरी की भूमिका में उतर जायें।

**टिप्पणियाँ**

1. रोजा लक्जेम्बर्ग की किताब 'द एक्युमुलेशन ऑफ कैपिटल' (न्यू यॉर्क : मंथली रिव्यु प्रेस, 1951) में जोन रोबिनसन की 'भूमिका', 28
2. ग्रोवर क्लार्क, 'द बैलेंस शीट्स ऑफ इम्पीरियलिज्म' (न्यू यॉर्क : कोलम्बिया यूनिवर्सिटी प्रेस, 1936), 5-6
3. डेविड ए वेल्स, 'रीसेंट इकनोमिक चेंजेज' (न्यू यॉर्क : एप्पलटन, 1889), 1
4. क्लार्क, 'द बैलेंस शीट्स ऑफ इम्पीरियलिज्म', 5-6; हैरी मैगडोफ 'इम्पीरियलिज्म : फ्रॉम थे कोलोनियल एज टू द प्रेजेंट' (न्यू यॉर्क : मंथली रिव्यु प्रेस, 1978), 35, 108।

# विज्ञान, शिक्षा और अनुसंधान की ओर केन्द्र सरकार की उदासीनता के खिलाफ वैज्ञानिकों का विरोध प्रदर्शन

**--मलिक काकवी**

पहली बार वैज्ञानिकों और शोधकर्ताओं ने शोध के लिए अनुकूल परिवेश की माँग उठाते हुए दिल्ली में एक विरोध प्रदर्शन आयोजित किया। उन्होनें 14 अप्रैल को दिल्ली में "विज्ञान के लिए जुलूस" नाम से एक रैली का आयोजन किया और विज्ञान, शोध और उच्च शिक्षा के प्रति सरकार की उदासीनता के विरुद्ध अपना गुस्सा दर्ज कराने के लिए मंडी हाउस से संसद मार्ग तक जुलूस निकाला।

विरोध प्रदर्शन के दौरान उन्होनें शोध बजट में बढ़ोत्तरी, शिक्षा के लिए बजट सम्बन्धी निर्धारण, सरकार द्वारा वित्तपोषित संस्थानों और संगठनों में शोध और तकनीकी के विकास और विज्ञान पर आधारित शिक्षा के विकल्पों में वृद्धि की माँग की। शोधकर्ताओं और वैज्ञानिकों की विशिष्ट माँगें थी-- विज्ञान के लिए जीडीपी का 3 प्रतिशत और अवैज्ञानिक विश्वासों के प्रसार को खत्म करने और अगली पीढ़ी को शिक्षित करने के लिए जीडीपी का 10 प्रतिशत खर्च किया जाए। आईआईटी, आईजीआईबी, डीयू, जेएनयू, अशोका विश्वविद्यालय, अम्बेडकर विश्वविद्यालय और अन्य विज्ञान पर आधारित संस्थानों के वैज्ञानिकों, प्रोफेसरों, शिक्षकों, शोध करने वाले विद्यार्थियों और छात्रों ने जुलूस में हिस्सा लिया।

टेन न्यूज़ को बताते हुए, जेएनयू के शोधकर्ता, शोध विद्यार्थी और प्रोफेसर ध्रुव रैना ने कहा, "सरकार पौराणिक कथाओं को विज्ञान के साथ मिलाने की कोशिश कर रही है। विज्ञान पर आधारित शिक्षा का परिवेश खत्म होता जा रहा है। विज्ञान आधारित विषयों को पाठ्यक्रमों की पुस्तकों में प्रस्तावित नहीं किया जा रहा है।"

जबकि एम्स की प्रोफेसर जोयश्री सेन गुप्ता ने कहा, "उच्च शिक्षा और शोध पर आधारित शिक्षा को उन्नत करने और नयी रचनात्मक तकनीकी में वैज्ञानिकों की सलाह के बारे में जो ऊँचे दावे सरकार ने किये थे, वे केवल एक दिखावा मात्र हैं। कोई भी वैज्ञानिक मूलभूत ढाँचे, पूँजी और उच्च शिक्षा के अभाव में यह सब कैसे कर सकता है?" उन्होंने जोर दिया कि, "जब से यह सरकार सत्ता में आयी है, इसने उच्च शिक्षा संस्थानों को अपना निशाना बनाया है और पीएचडी के सीटों की छँटनी, बजट में कटौती और विज्ञान की तरह पौराणिक कथाओं का प्रचार-प्रसार किया है।"

उसके बाद, निम्नलिखित माँगों के साथ एक अनुबंध प्रधान मंत्री के सामने रखा गया--

1. अवैज्ञानिक और पुराने रूढ़िवादी विचारों के प्रचार-प्रसार को रोका जाए और वैज्ञानिक सूझ-बूझ, मानवीय गुणों और संविधान की 51ए धारा के अनुरूप जाँच-पड़ताल की भावना को बढ़ावा दिया जाए।

2. यह सुनिश्चित किया जाये कि शिक्षा प्रणाली ऐसी अवधारणाएँ न दे जो वैज्ञानिक साक्ष्यों के विपरीत हों।

3. वैज्ञानिक साक्ष्यों पर आधारित नीतियों को ही अमल में लाया जाये।

4. शिक्षा के लिए बजट सम्बन्धी निर्धारण और सरकार द्वारा वित्तपोषित संस्थानों और संगठनों में शोध और तकनीकी के विकास में वृद्धि की जाये।

(नेशनल हेराल्ड से साभार)

**अनुवाद--रुचि मित्तल**

# राहुल सांकृत्यायन की 125 वीं वर्षगाँठ पर

**--कर्ण सिंह चौहान**

राहुल सांकृत्यायन को हम कैसे याद करें और इस स्मरण के पीछे की भावनाओं और उसके पाठक के ऊपर पड़ने वाले दबावों और प्रभावों को किस रूप में समझें!

वे 9 अप्रैल 1893 को उत्तर प्रदेश के पूरब के एक छोटे से गाँव में पैदा हुए थे। बिना किसी औपचारिक डिग्री के महापंडित की उपाधि से विभूषित हुए थे, वे लगभग 30 भाषाओं के जानकार थे, उन्होंने 140 किताबें लिखी थीं जिनके विषय इतिहास से लेकर दर्शन तक फैले थे, उन्होंने दुनिया की निरंतर यात्राएं की थीं या कि वे अन्ततः मार्क्सवाद के ग्रहण तक पहुँचे थे और जनता के अपने लेखक के रूप में प्रसिद्धि पायी थी!

ऐसे कितने ही क्षेत्रों में उन्होंने अभूतपूर्व योगदान दिया था जिसका वर्णन न जाने कितने शोधग्रंथों का प्रेरणाश्रोत बन सकता है। व्यक्तित्व के असंख्य पहलुओं का यह साक्षात्कार इतना विराट और आह्लाद्कारी है कि इसमें उनके प्रति श्रद्धा और भक्ति की अतिशयता के अलावा और किसी मूल्यांकन या समीक्ष्य बिन्दुओं की कल्पना असम्भव है। हिन्दी में राहुल सांकृत्यायन पर हुए अधिकांश विमर्श का यही सार-संक्षेप है। इसमें व्यक्ति और उसके कर्म की ज्वलन्त जीवन्तता को अन्ततः पूज्य मूर्ति में बदल दिया जाता है जिसे यदा-कदा समारोहों में पुष्पांजलि के लिए उपयोग में लाया जाता है।

राहुल पर हुए अधिकांश लेखन की यही कहानी है।

इसी विमर्श का एक समानान्तर पक्ष वह है जब गलदश्रु भावुकता में बहुत ही आक्रोश में सत्ता और सांस्कृतिक डिस्कोर्स द्वारा राहुल जैसे 'महान' लेखक, विचारक, व्यक्ति की निरन्तर उपेक्षा, अवहेलना और अवमानना की भर्त्सना की प्रतिस्पर्धा ही विमर्श का केन्द्रीय स्वर बन जाता है।

उसमें राहुल की उन आधारभूत मान्यताओं तक को भुला दिया जाता है कि शोषण पर आधारित तमाम राज्यसत्ताएँ न केवल शोषितों के शोषण, अन्याय और अवमानना पर टिकी हैं बल्कि उनके पक्षधरों के प्रति भी वही व्यवहार करती हैं। विडम्बना तो यह है कि ऐसा करने वालों में अधिकांश वही बुद्धिजीवी होते हैं जो वर्तमान व्यवस्था को शोषक प्रभुवर्ग की मानते हैं, लेकिन उससे अपेक्षा करते हैं कि वह अपने वर्गशत्रुओं का सम्मान करे!

राहुल सांकृत्यायन के प्रति सत्ताओं और व्यवस्थाओं का व्यवहार इस बात का सबूत तो है ही कि अभी वह समय नहीं आया है जिसमें सामान्य जन के पक्ष में खड़े लेखको, विचारकों के प्रति पूर्वाग्रहमुक्त सम्मान विकसित हो सके।

राहुल सांकृत्यायन को इन व्याख्याओं और उच्छ्वासों से न समझा जा सकता है, न उनके जीवन, रचना और कर्म से किसी तरह की जीवन्त मुठभेड़ या संवाद स्थापित किया जा सकता है। अधिक विस्तार में न जाकर यहाँ हम उन कुछेक विचारणीय बिन्दुओं को छूने की कोशिश करेंगे जिनसे उनके व्यक्तित्व और विचार के सरोकारों को अनावृत करने में मदद मिल सकती है। इसमें हम अपने परिवृत्तों और सरोकारों से मुठभेड़ करते हुए ही आगे बढ़ सकते हैं।

सभी जानते हैं कि राहुल जी की औपचारिक शिक्षा केवल मीडिल स्कूल तक ही हुई थी। इसमें सामान्य भारतीय परिवारों की तरह परिवार की आर्थिक तंगहाली कारण नहीं थी बल्कि शिक्षा और सामाजिक मान्यताओं की औपचारिकताओं के प्रति उनके मन में पनपता विद्रोह था जिसके लिए उन्होंने बचपन से बार-बार घर से पलायन किया। हालाँकि इसका खामियाजा उन्हें किसी उच्च शिक्षण संस्थान में औपचारिक पद से वंचित रहकर भुगतना पड़ा, सिवाय रूसी विश्वविद्यालय में इंडोलॉजी पढ़ाने के निमंत्रण के।

यह अच्छा ही हुआ कि विश्व संस्कृति को ऐसी बहुमुखी प्रतिभा मिली जिसके योगदान को एक योग्य अध्यापक की सीमा में रखकर शायद ही देखा जाय। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि ज्ञान को हस्तगत करने में कोई भी ज्ञात साधन उतना सहायक नहीं है जितना जीवन को सार्थक और सतत गतिशील रूप में जीने की उत्कट अभिलाषा और आन्तरिक जिजीविषा। इसीलिए जीवन भर नये-नये ज्ञान का अर्जन और लगातार सोपानों को पार करने का क्रम राहुल सांकृत्यायन के सम्बन्ध में केवल औपचारिकता में दुहराये जाने वाला मुहावरा नहीं है, बल्कि जीवन संघर्ष के बीच उसकी संगति में और उसको प्रशस्त बनाने वाले ज्ञान की पिपासा और खोज का दस्तावेज है।

उनके जीवन में, विश्व-दृष्टि में, लेखन सरोकारों में मृत्यु-पर्यंत होने वाले लगातार परिवर्तनों, शोधों, ग्रहण और त्याग का जो सिलसिला है उसे वास्तविक अर्थों में 'सत्य की खोज' की अनवरत और अधूरी यात्रा ही कहा जा सकता है। सत्तर साल के जीवन में उन्होंने शारीरिक और भौतिक जगत में ही अनगिनत यात्राएँ नहीं कीं, बल्कि अन्तर्मन और अन्तर्जगत, विश्व-दृष्टि और अन्तर्दृष्टि, वैचारिक और दार्शनिक सरोकारों में भी एक असीम यात्रा तय की।

कहना होगा कि उनका सम्पूर्ण जीवन बाह्यजगत और अन्तर्जगत के बीच निरन्तर चले संवाद, विवाद, समाकलन, स्वीकार और अस्वीकार का असमाप्य सिलसिला है। परम्परागत ब्राह्मण परिवार की रूढ़ियों से मुक्त होने के लिए जीवन के वास्तविक अर्थ को खोजने में वे पहले राम उदार बन सनातनधर्मी हुए कि शायद ईश्वर प्राप्ति ही उसका एकमात्र लक्ष्य हो। वहाँ से विफलता की आत्महंता निराशा से नवजागरण-कालीन आर्यसमाज में कुछ रोशनी दिखाई दी तो उसको ग्रहण कर उसका सम्पूर्ण ज्ञान अर्जित किया। उससे भी जीवन की वास्तविक समस्याओं, तर्क और विवेक का हल नहीं मिला तो बौद्धधर्म की तर्काधारित मान्यताओं को स्वीकार कर राहुल सांकृत्यायन बने। वहाँ भी संतुष्टि नहीं मिली तो विश्व में उस समय की सबसे वैज्ञानिक, तर्काधारित विचारधारा मार्क्सवाद को अपनाया। लेकिन जब उसमें भी अनेकानेक अन्तर्विरोध, न्यूनताएँ और अंधविश्वास दिखाई दिए तो उससे आगे जाने का प्रयास किया।

देखने की बात यह है कि यह स्वीकार और त्याग किसी वायवी, कैरियरधर्मी, पैशन या फैशन के तकाजों से नहीं व्यक्तिगत-सामाजिक जीवन, सामान्य मानव की वास्तविक स्वतंत्रता और समानता के गहरे सरोकारों, बौद्धिक-तार्किक तकाजों के ठोस व्यवहार से पैदा हुआ था। उनके लिए ये तमाम आस्थाएँ, विचार और सिद्धान्त जीवन-जगत के वास्तविक मर्म को समझने या उसे स्वस्थ, सुन्दर और सम्पूर्ण बनाने के लक्ष्य तक पहुँचाने वाले साधन या कश्तियाँ थे। इस यात्रा में उन्होंने एक-एक कर जीवन नद को पार करने के लिए न जाने कितनी कश्तियों का प्रयोग किया और आगे बढ़ गये। मजेदार बात यह है कि इन मतवादों के अधिकांश अनुयायी जीवन भर इन कश्तियों को बोझ की तरह ढोते रहे और आज भी ढो रहे हैं।

इसी में उनके जीवन का समय पूरा हुआ और हम यह नहीं देख पाए कि इससे आगे का रास्ता क्या है! शायद इसके आगे अभी कोई स्पष्ट मार्ग हो ही नहीं या यह भी हो सकता है कि समस्त मार्गों की निस्सारता पर ही राहुल जैसा व्यक्ति पहुँचता।

फिर भी राहुल सांकृत्यायन ने इस यात्रा के इन अनेकानेक महत्त्वपूर्ण पड़ावों को इनमें मिली निराशा और हताशा की भेंट नहीं चढ़ने दिया। रास्ते की तमाम खोजों को उन्होंने पूरे प्राणपण से जिया, उसके लिए जीवन समर्पित कर उसमें उपलब्ध समस्त ज्ञान-विज्ञान को अपने अध्ययन-मनन से समृद्ध किया और अन्ततः अपने जीवन-व्यवहार से सिद्ध किया कि इनमें से कोई भी सम्पूर्ण और एकमात्र सत्य नहीं है। आस्था-विश्वासों की इस यात्रा में उन्होंने हरेक में इतना व्यापक योग दिया कि जो चाहे वह उसपर न केवल गर्व कर सकता है बल्कि राहुल सांकृत्यायन पर अपना अधिकार जमा उन्हें अपने मार्ग का महान प्रवक्ता घोषित कर सकता है।

उनकी अर्जित विद्वत्ता ने सभी को समृद्ध किया - प्राचीन भारतीय संस्कृति और धर्म के विश्वासियों को जिन्होंने उन्हें 'महापंडित' की उपाधि दी; बौद्धमत के अनुयायियों को जिसके लिए उन्होंने अपनी अनगिनत यात्राओं में न केवल अलभ्य विपुल सामग्री को उपलब्ध कराया बल्कि उसपर प्रामाणिक भाष्य भी लिखे; मार्क्सवाद को अपनी दर्जनों पुस्तकों और आंदोलनों में सक्रिय भागीदारी से। यही नहीं दो खंडों में पहले-पहल मध्य एशिया का इतिहास लिखने वाले वे भारत के पहले लेखक हैं जिसके लिए उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार भी मिला। उनका यह रचनात्मक योगदान और वास्तविक जीवन की सक्रियता इन सबके रिक्थ में बड़ा योगदान है।

उनका जीवन एक अनवरत यात्री का जीवन है। उनके अनुसार यात्रा मनुष्य को स्वतंत्र, ऊर्ध्वगामी, उदार, तर्कशील और मानवीय बनाती है। इन आधारों पर वे किसी भी बड़े-से-बड़े विश्वास, आस्था को उत्तर-आधुनिक अर्थों में विखंडित करने का साहस रखते हैं बल्कि उसकी सीमाओं से मुक्त हो नयी दिशाओं में बढ़ने का जोखिम भी उठाते हैं।

○

"मजहब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना"-- इस सफेद झूठ का क्या ठिकाना। अगर मजहब बैर नहीं सिखाता तो चोटी-दाढ़ी की लड़ाई में हजार बरस से आज तक हमारा मुल्क पामाल क्यों है? पुराने इतिहास को छोड़ दीजिए, आज भी हिन्दुस्तान के शहरों और गाँवों में एक मजहब वालों को दूसरे मजहब वालों के खून का प्यासा कौन बना रहा है?... हिन्दुस्तानियों की एकता मजहबों के मेल पर नहीं होगी, बल्कि मजहबों की चिता पर। कौए को धोकर हंस नहीं बनाया जा सकता। कमली को धोकर रंग नहीं चढ़ाया जा सकता। मजहबों की बीमारी स्वाभाविक है। उनका मौत को छोड़कर कोई इलाज नहीं।

**--राहुल सांकृत्यायन**